UGC Approved Research Journal No. 47816
पंजीयन संख्या RNI No.: MPHIN/2002/9510
ISSN : 2456-8856
डाक पंजीकृत क्रमांक मालवा डिवीजन/204/2021-2023 उज्जैन (म.प्र.)
Peer Reviewed Bilingual Monthly International Research Journal
प्रेषण दिनांक 30
पृष्ठ संख्या 28

आश्वस्त

वर्ष 23, अंक 210
अप्रैल 2021

शत-शत नमन

संपादक - डॉ. तारा परमार

भारती दलित साहित्य अकादमी मध्यप्रदेश, उज्जैन की अन्तर्राष्टीय मासिक शोध पत्रिका

वर्ष : 23 अंक 210
अप्रैल 2021

आश्वस्त

(सन् 1983 से निरंतर प्रकाशित)

RNI No.: MPHIN/2002/9510
ISSN : 2456-8856

भारती दलित साहित्य अकादमी मध्यप्रदेश, उज्जैन (पंजीयन क्रमांक 2327 दिनांक 13/05/1999) की मासिक पत्रिका

संस्थापक सम्पादक
डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी

संरक्षक
सेवाराम खाण्डेगर
11/3, अलखनन्दा नगर, बिड़ला हॉस्पिटल के पीछे,
उज्जैन मो.: 98269-37400

परामर्श
आयु. सूरज डामोर IAS
पूर्व सचिव-लोक स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण वि.
म.प्र.शासन, भोपाल मो. 094253-16830

सम्पादक
डॉ. तारा परमार
9-बी, इन्द्रपुरी, सेठी नगर, उज्जैन-456010
मो. 94248-92775

सम्पादक मण्डल :
डॉ. जयप्रकाश कर्दम, दिल्ली
डॉ. खन्नाप्रसाद अमीन, गुजरात
डॉ. जसवंत भाई पण्ड्या, गुजरात
डॉ. शैलेन्द्र कुमार शर्मा, म.प्र.

कानूनी सलाहकार
श्री खालीक मन्सूरी एडव्होकेट, उज्जैन

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	अपनी बात	डॉ. तारा परमार	03
2.	स्त्री मुक्ति आंदोलन और डॉ. अम्बेडकर की विरासत	डॉ. रजत रानी आर्य (मीनू)	04
3.	इक्कीसवीं सदी के हिन्दी संगीत पर पाश्चात्य प्रभाव	दिनेश कुमार सैनी शोधार्थी	09
4.	हिन्दी की दलित कहानियों में विशेष नारी पात्र	डॉ. दीपिका परमार	11
5.	सुशीला टाकभौरे की कहानियों में वर्णित जाति, संघर्ष और नारी चेतना	डॉ. धीरज वणकर	15
6.	गीत-गज़ल : 'कोई भी एक दूसरे को अब समझ पाता नहीं '	डॉ. मधुर नज़्मी	19
7.	कविताएँ		21
8.	लघुकथाएँ		23
9.	कावेरी की कहानियाँ (पुस्तक समीक्षा)	डॉ. जयप्रकाश कर्दम (समीक्षक)	24
10.	करनी कुछ और कथनी कुछ और (संस्मरण)	जयप्रकाश वाल्मीकि	26

UGC द्वारा मान्यता 47816 प्राप्त पत्रिका
खाते का नाम - आश्वस्त,खाते का नं.- **63040357829**
बैंक - भारतीय स्टेट बैंक, शाखा- फ्रीगंज, उज्जैन
IFS Code - SBIN0030108

Web : www.aashwastujjain.com
E-mail : aashwastbdsamp@gmail.com

एक प्रति का मूल्य	:	रुपये 15/-
वार्षिक सदस्यता शुल्क	:	रुपये 150/-
आजीवन सदस्यता शुल्क	:	रुपये 1,500/-
संरक्षक सदस्यता शुल्क	:	रुपये 10,000/-

विशेष : सम्पादन, प्रकाशन एवं प्रबंध अवैतनिक तथा पत्रिका में प्रकाशित विचारों से सम्पादक-मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। विवाद की स्थिति में न्यायालय क्षेत्र उज्जैन रहेंगा।

अपनी बात

हिंसा के कई रूप है। एक हिंसक और दूसरा अहिंसक । अहिंसक हिंसा सामाजिक होती है। अहिंसक हिंसा खूनी हिंसा से भी अधिक खतरनाक होती है, दलितों, पिछड़ी जाति वालों को आए दिन अहिंसक हिंसा का शिकार होना पड़ता है। यह एक प्रकार की सामाजिक मृत्यु है। सामाजिक मृत्यु स्वाभाविक मृत्यु से भी खतरनाक होती है।

गांवों में खेती–बारी का काम तो तथाकथित दलित लोग ही करते हैं। फिर उनके द्वारा उपजाया गया अन्न दूषित क्यों नहीं होता? मंदिर निर्माण का काम और मूर्ति तराशने का कार्य भी इसी समाज के लोग करते है फिर उन्हें मंदिर प्रवेश से वंचित क्यों किया जाता हैं? यह दोहरा और दोगला आचरण सुविधावादी है।

डॉ. अम्बेडकर द्वारा लिये गये साहित्य, उनके मांग–पत्र व संविधान सभा में उनके विश्लेषण उनकी ज्ञान–पिपासा के प्रमाण हैं। डॉ. अम्बेडकर मूल्य आधारित नेतृत्व के हिमायती थे। उनका मिशन ऐसे समाज की स्थापना करना था जो समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व के मूल्यों में यकीन रखता हो। वे दलित, समाज को बदल सकते है यह बात वे जानते थे। उन्होंने दलित जनता को राजनीति, समाज के कार्यों में बराबर शामिल किया।

डॉ. अम्बेडकर की असली धारा वह करोड़ों– करोड़ लोग हैं जो जातिगत–घृणा, अपमान व असमानता झेलने के बावजूद प्रगति के पथ पर अग्रसर है। डॉ. अम्बेडकर की धारा भारत का संविधान है जिसने पंड़ितों, पुजारियों और महंतों की सत्ता का अंत कर लोकतंत्र एवं संसदीय प्रजातंत्र की स्थापना की व मानव–मानव के बीच जाति, प्रजाति, लिंग एवं सामाजिक हैसियत के आधार पर अन्याय, असमानता को खत्म किया। उनकी धारा का सर्वोत्तम हिस्सा धार्मिक उत्पीड़न सामाजिक अलगाव, आर्थिक शोषण, पाश्विक अत्याचार एवं सांस्कृतिक दमन के खिलाफ धर्म निरपेक्ष जनता का संघर्ष है।

डॉ. अम्बेडकर ने अपने जमाने में वातावरण के प्रदूषण से कई गुना अधिक भयंकर सामाजिक प्रदूषण को ठीक करने का निश्चय किया और स्वतंत्र भारत का संविधान बनाकर सामाजिक प्रदूषण को समाप्त करने की व्यवस्था की।

जाति एक मानसिक विकृति है जिसने दलितों को निर्बल, प्रतिकार शून्य और गुलामवृत्ति का बना दिया। विश्व के अनेक देशों फ्रांस, जर्मनी, अमेरिका, इंग्लैंड में अनेक क्रांतियाँ इस संदर्भ में हुई किंतु भारत में ऐसा कभी नहीं हुआ। इस दलदल की खाई को पाटने का बीड़ा बाबासाहेब ने उठाया। सबके आगे सिर रखने और निर्बलों के आगे पैर रखने की मानसिकता को उन्होंने नकारा। विषमतावाद का समर्थन करनेवाले सभी साहित्य को, वेदों और धर्म के नाम पर वितंडरवाद को बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर ने नकार दिया।

बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर के मन में सबसे बड़ी तड़प इस बात की थी कि भारत के करोड़ों अछूतों को पारम्परिक दमनकारी नीतियों से कैसे मुक्त कराया जाये।

1930 के गोलमेज सम्मेलन जो ब्रिटिश प्रधानमंत्री रेम्जे मैक्डोनाल्ड की अध्यक्षता में प्रारंभ हुआ में अछूतों के प्रतिनिधि के रूप में पूछा–क्या यह बताया जा सकता है कि पिछले 150 वर्षों में ब्रिटिश शासन में अग्रेंजों ने भारत से छुआछूत मिटाने के लिए क्या काम किया है ? क्या ऐसी सरकार किसी के लिए कुछ भी काम की है ?

इस सम्मेलन में वे सबसे अधिक बोले, लेकिन वे मानवता और सामाजिक न्याय के लिए ही बोले। मजदूर और किसानों का शोषण करनेवाले पूंजीपतियों और जमींदारों की रक्षक सरकार हम नहीं चाहते। ब्रिटिश प्रधानमंत्री के समक्ष अपने यादगार भाषण में उन्होंने कहा कि मैं इस सच को जोर देकर कहना चाहता हूँ कि ब्रिटिश भारत की आबादी का पांचवां हिस्सा अछूत गुलामों व जानवरों से भी बदतर जीवन जीने के लिए मजबूर है। मेरे समाज के लोगों को आजादी से पहले रोटी, कपड़ा और मकान की ज्यादा जरूरत है। दलितों को देश के सवर्णों के जुल्म, अत्याचार, जाति–पांति, छुआछूत, भेदभाव, शोषण, अन्याय और उत्पीड़न से मुक्ति दिलाने की विशेष जरूरत है। उन्हें सामाजिक आजादी और आत्म सम्मान की आवश्यकता है। यही बात आज हम अपनी सरकार से भी पूछना और कहना चाहते हैं।

– डॉ. तारा परमार

शोध पत्र–

स्त्री मुक्ति आंदोलन और डॉ. अम्बेडकर की विरासत

– डॉ. रजत रानी आर्य (मीनू)

स्त्री मुक्ति यानी स्त्रियों की आजादीं का पहला पाठ संयुक्त राज्य अमेरिका के मैसाच्यूटेस राज्य में 1611 में वोट देने का अधिकार से शुरू मान सकते हैं। इस अधिकार को पाने के लिए भी उन्हें लंबा संघर्ष करना पड़ा था, मगर दुखद यह रहा कि कुछ स्त्री विरोधी विचारकों की वजह से उनका यह मताधिकार इसी राज्य में 1780 में वापस ले लिया गया था। इन निर्णयों से दुनिया में स्त्रियों के समर्थन और विरोध के स्वर एक साथ गूंजने लगे थे। जहां एक ओर उदारवादी पुरुष समुदाय स्त्रियों की स्थितियां सुधारने के पक्ष में प्रयास कर रहा था तो दूसरी ओर अनुदारवादी वर्ग उनके कदमों को गुलामी की ओर पीछे खींच रहा था। स्त्रियों के मानव अधिकार, मताधिकार और शिक्षा जैसे बुनियादी मुद्दों की शुरूआत से उन्हें संगठित करने की मांग उठी।

किसी भी संगठन और संघर्ष को मूर्त रूप शिक्षा के पाठ से प्रारंभ होता है। यह बात भारत में बाबा साहब डॉ. भ़ीमराव अम्बेडकर ने दलितों के विकास के लिए तीन सूत्र देकर कही थी। 'शिक्षित हो, संगठित हो और संघर्ष करो।' उन्होंने शिक्षित होने की बात सबसे पहले की थी। स्त्री मुक्ति के बारे में भी यही फार्मूला लागू होता है। स्त्रियां शिक्षित होंगी तो संगठित भी हो जाएंगी और अपने अधिकारों के लिए संघर्ष भी कर सकती हैं। जब 1788 में फ्रांस के राजनीतिज्ञ कांडसैंड ने महिलाओं को शिक्षा देने और नौकरी प्रदान करने के साथ ही राजनीति में भाग लेने की मांग की थी तो उसका असर अन्य देशों में भी दिखाई देने लगा था। यही कारण है कि पुनः संयुक्त राज्य अमेरिका ने 1840 में दुक्रीशिया के नेतृत्त्व में 'ईक्वल राइट' यानी समान अधिकार संगठन की स्थापना करके श्वेत महिलाओं की तरह अश्वेत महिलाओं के लिए समान अधिकारों की जोरदार मांग की थी।

स्त्रियों का शोषण जब पूरी दुनिया में अनेक रूपों में हो रहा था तो उसी दमन में मुक्ति की उम्मीद भी छिपी होती थी। जिस देश में सबसे पहले स्त्रियों को नागरिक के रूप में पहचान मिली, उसे कुछ वर्षों के बाद वापस ले लिया गया। अमेरिका में ही फिर 8 मार्च 1857 को स्त्री मुक्ति का बिगुल बजा था। न्यूयार्क में कपड़ा मिलों की कामगार स्त्रियों ने इस दिन अपने वेतन व काम के घंटे 15–16 से घटाकर 10 घंटे करने की मांग को लेकर एक प्रदर्शन किया था। उसके बाद दुनिया की उन स्त्रियों के लिए यह एक प्रेरक उदाहरण बना गया था जो स्त्रियों के अधिकार–चेतना से संपन्न थीं। आज हम सब जानते हैं कि 8 मार्च विश्व महिला दिवस के रूप में दुनिया भर में मनाया जाता है। यह स्त्री चेतना का पर्व है और उसकी जाग्रति का प्रतीक भी है। विश्व में स्त्रियों का यह प्रथम प्रदर्शन था, जिसमें स्त्रियों ने स्वयं अपने समान अधिकारों की बात उठाई थी। यह दिन स्त्रियों के अधिकारों की मांग का पहला दिन था। उनके उठाए गए इस कदम को उस समय की ट्रेड यूनियनों ने भी पसंद नहीं किया था। उस दिन की एक खास बात यह भी है कि यह ऐसी ट्रेड से जुड़ी श्रमिकाएं थीं जो न तो फैशन से जुड़ी थीं और न ही उनकी मांग देह मुक्ति की थी। नैसर्गिक रूप से लिंग भेद आधारित विषमतावादी श्रम और उससे जुड़े असमान–वेतन नीति के विरोध में यह न्याय संगत आवाज थी।

भारत में नारी मुक्ति या नारीवादी चिंतन पश्चिमी विचारधारा के शब्द भले हों मगर पूरी दुनिया की स्त्रियां पुरूषों की तुलना में दोयम दर्जे का जीवन जीती रही हैं। अशिक्षा की मार उन पर पड़ी है। भारत में वे अभी भी अशिक्षा की शिकार हो रही हैं। भले ही मौजूदा समय में स्त्रियों के पक्ष में 'बेटी पढ़ाओ, बेटी बचाओ' जैसे नारे गूंज रहे हैं, मगर देश की गरीब दलित बेटियां न तो बच पा रही हैं और न पढ़ पा रही हैं। वे घरेलू हिंसा की

शिकार हो रहीं हैं। उनके वोटों की लूट होती रही है। वे आर्थिक रूप से पराधीन हैं। यह सत्य है जिसे नकारा नहीं जा सकता। हमारे समाज में आज भी स्त्रियों की बड़ी आबादी खास कर दलित, आदिवासी और पिछड़े वर्ग की स्त्रियां परिवार, समाज में सबसे निचली सीढ़ी पर खड़ी हैं। यह बोध जिन स्त्री वर्ग ने पहले किया या उन्हें उनके समाज और देश ने पहले आजाद कराया उनमें ही पहले गुलामी से मुक्ति की छटपटाहट पैदा हुई, और उन्हें सभी क्षेत्रों में प्रतिनिधित्व मिला जो आजादी का ही एक स्वरूप है।

आज नारी मुक्ति शब्द का आशय कुछ लोग बहुत ही रूढ़ रूप में लेते हैं। इस शब्द का आशय एक वर्ग देह मुक्ति से जोड़ कर देखता है न सिर्फ पुरूष बल्कि स्वयं एक स्त्रियों का समूह भी इस शब्द से अपने को दूर रखता है। बीसवीं सदी के लगभग मध्य में सीमोन द बोउवार स्त्री मुक्ति की मुख्य पैरोकार के रूप में उभरी थीं। दुनियां में उन्होंने अपना मुकाम बनाया था। उनकी महत्त्वपूर्ण पुस्तक 'द सेकेण्ड सेक्स' हिन्दी में अनुदित 'स्त्री उपेक्षिता' ने स्त्री मुक्ति को कई नए आयामों से जोड़ा है। दुनिया की चेतनशील उन स्त्रियों पर प्रभाव पड़ा जो शिक्षित थीं और जो मुक्ति के सपने देखती थीं। भारत की कुछ जागी हुए शिक्षित स्त्रियां उनके सिद्धांत को अतिवादिता से भी जोड़ती रही हैं। सीमोन वोउवार दुनिया की औरतों से कहतीं थीं कि, 'स्त्री पैदा नहीं होती स्त्री बना दी जाती है।' यह वह विचार था जो स्त्रीत्व बोध से उत्पन्न हुआ था। इनके चिंतन में स्त्री को आत्मनिर्भर बनाना पहली थी। आत्मनिर्भर स्त्री ही अपनी मुक्ति की वास्तविक लड़ाई लड़ सकती हैं। उन्होंने एक बात स्त्री के बारे में कही थी जो सीधे–सीधे दलित–आदिवासी और पिछड़े वर्ग की स्त्रियों से जुड़ती है। वे कहती हैं, ''स्त्री अधीनस्थ जाति है। जाति का अर्थ है कि कोई उस जाति में उत्पन्न हुआ है और उससे बाहर नहीं जा सकता जबकि सिद्धांततः एक व्यक्ति एक वर्ग से दूसरे वर्ग में स्थानांतरित हो सकता है लेकिन यदि आप औरत हैं तो कभी पुरुष नहीं बन सकतीं। औरत विशुद्ध रूप से एक जाति है, वर्ग नहीं। आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से औरतों के साथ होने वाला व्यवहार उन्हें एक अधीनस्थ जाति के रूप में निर्मित करता है।''

डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने भी भारतीय हिन्दू समाज के बारे में यही आधार भूत बात कही थी ''हिन्दू समाज एक मीनार है। एक–एक जाति इस मीनार का एक–एक तल है और एक तल से दूसरे तल में आने–जाने का कोई मार्ग नहीं है, जो जिस तल में जन्म लेता है, उसी तल (जाति) में मरता है।''

भारतीय संदर्भ में नारी मुक्ति आंदोलन को इसी नजरिये से देखने की जरूरत है। द्विज स्त्रियों और दलित स्त्रियों की सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक और राजनैतिक स्थितियां अपने समाज जैसी ही हैं। माना कि दलित स्त्रियां भी अपने समाज में दोयम दर्जे का जीवन जीने को विवश हैं। उनकी वह लडाई अपने घर के भीतर जैसी ही है। उसके समाधान भी घर में ही मौजूद हैं। उसकी पुरुष से लड़ाई अलगाव की नहीं है, बराबरी की है। अपवाद को छोड़ कर दलित पुरुष भी सिद्धांतः उतने संकुचित मानसिकता के नहीं हैं, जितने द्विज पुरुष हैं। गुलाम मालिक का अनुकरण स्वाभाविक रूप से करने लगता है। अनुकरण अभ्यास से अधिक होता है सिद्धांत से कम, दलित स्त्रियों और स्वयं दलित समाज के पुरूषों के लिए यह एक अच्छी बात है कि उनके मूल सिद्धान्त अलग रहे हैं। वे वेद, पुराण से संचालित नहीं होते हैं। वे दलित महापुरूषों के संघर्षमय जीवन और स्त्री–पुरूष की साझा और समाज संस्कृति में विश्वास करते हैं। इसके साथ आधुनिक समय में वे संविधान प्रदत्त मूल्यों में विश्वास करते हैं, जो समानता और समता और स्वतंत्रता के सिद्धान्तों पर आधारित है। यही मूल्य अन्तर है दलित और गैरदलित स्त्री की मुक्ति के सिद्धान्तों में।

दलित स्त्री की लड़ाई बहुपरतीय है। दलित स्त्रियों को अपने घर के भीतर पितृसत्ता के विरुद्ध संघर्ष करना है और जातिसत्ता के राक्षस से भी दो चार होना होता है। साथ ही साथ उन्हें अपनी सामाजिक, शैक्षिक,

आर्थिक, राजनीतिक, ज्ञान, विज्ञान के क्षेत्रों में अपने प्रतिनिधित्व पाने के लिए संघर्ष करना होगा। अभी भी देश के विकसित क्षेत्रों में उनकी उपस्थिति नगण्य बनी हुई है। दलित–आदिवासी स्त्रियां जीवन जीने के मूलभूत साधनों घर, पानी, बिजली, रोजगार इत्यादि को भी प्राप्त नहीं कर पाईं हैं।

यही कारण है कि दलित स्त्रियां अपनी जड़े ज्योतिबा फुले और उनकी पत्नी सावित्री फुले से जोड़कर देखती हैं। उनके जन्म दिवस 10 जनवरी को 'दलित स्त्री' मुक्ति दिवस के रूप में मनाना ज्यादा पसंद करतीं है।

हिंदुस्तान की अधिकांश बुद्धिजीवी स्त्रियां जातियों में बंटी हैं। जातियों से जुड़कर उनकी मुक्ति के द्वार खुलते हैं। दोनों की स्थितियां तभी तक समान हैं जब तक वे प्रातिक रूप से स्त्री हैं वर्ण और जाति व्यवस्था उन्हें जातियों में बांट देता है।

भारत में सभी वर्णों की स्त्रियों की मुक्ति की व्यवस्थित और कानूनी लड़ाई बाबा साहब डॉ भीमराव अम्बेडकर ने 'हिन्दू कोड बिल' देकर लड़ी थी। तत्कालीन संसद में जब यह बिल पास नहीं होने दिया गया था जिससे निराश होकर डॉ अ़म्बेडकर ने कानून मंत्री पद से 10 अक्टूबर 1951 को इस्तीफा दे दिया था। इससे उन्हें बहुत दुःख पहुंचा था। इस बिल का विरोध करने वाले नहीं चाहते थे कि उनकी बेटियों को अर्थिक रूप से पिता की सम्पत्ति में से कानूनी हक मिले और उनकी स्थिति सुधरे। वे आजाद भारत में भी स्त्रियों पर हिन्दू वर्ण व्यवस्था के कानून को लादना चाहते थे। बाद में 'हिंदू कोड बिल' टुकड़ों में पास हुआ था। व्यावहारिक रूप से स्त्रियों को आज भी उनका हक नहीं मिलता है।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर स्त्रियों के प्रति प्रारंभ से ही चिंतित थे। 19 फरवरी 1942 को नागपुर में अखिल भारतीय 'दलित फेडरेशन' अधिवेशन में उन्होंने कहा था–''मैं स्त्री समाज की प्रगति पर ही दलित समाज की प्रगति का मापदंड रखता हूं। महिलाओं का संगठन आवश्यक है। महिलाओं! स्वच्छ रहिए, अपने आपको दुगुर्णों से दूर रखिए, बेटियों को लिखाइए–पढ़ाइए उनके मन में महत्वाकांक्षाएं पैदा होने दीजिए। उनकी जल्दी शादी करने की कोशिश मत कीजिए।'' (डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर–वसंत मून, पृ. 126) वे साफ तौर पर कहते थे कि 'कोई भी आन्दोलन महिलाओं के बिना संभव नहीं है।' महिलाएं इस समाज की आधी ऊर्जावान आबादी हैं। यह बात डॉ. अम्बेडकर अच्छी तरह से जानते थे। इसीलिए वे उनकी भागीदारी को समाज के हर क्षेत्र में आवश्यक मानते थे। यही कारण है कि भारतीय स्त्रियों को मातृत्व अवकाश देने के लिए उन्होंने 21 फरवरी 1928 को 'बंबई राज्य की असेंबली' में भाग लिया था। उसमें उन्होंने कर्मचारी महिलाओं को उनके प्रसव काल में छुट्टी दिलाने के बारे में जो बिल पेश किया गया था, उसका उन्होंने जोरदार समर्थन करते हुए कहा था–''देश की इन माताओं को मातृत्व काल की निश्चित अवधि में विश्राम मिलना ही चाहिए।..... शासन अथवा मालिकों को इन महिलाओं का खर्च उठाना चाहिए।''(वही, पृ. 126)

हमारे देश में डॉ. अम्बेडकर ने स्त्रियों को मातृत्व अवकाश प्रदान करने की जो पहल की वह सामाजिक न्याय और स्त्री सशक्तीकरण की मजबूत कड़ी है। डॉ. अम्बेडकर स्त्रियों के विकास के लिए निरंतर न सिर्फ सोच रहे थे, बल्कि वे अपनी सोच को साकार करने के लिए प्रयासरत भी थे। जब डॉ. अम्बेडकर को वायसराय की काउंसिल में 20 जुलाई 1942 को श्रम–सदस्य के रूप में शामिल किया गया था तब उन्होंने अपने इस चार वर्षीय कार्यकाल में स्त्रियों से जुड़े कई कानून बनाए और पुराने कानूनों में बदलाव किया था। जैसे कारखानों और खदानों मे काम करने वाली महिलाओं के काम के घंटे और स्त्री–पुरूष श्रमिकों के लिए समान वेतन का प्रावधान किया गया। इन कामकाजी महिलाओं के छोटे बच्चों के लिए नजदीक आज की भाषा में क्रेच यानी पालनाघर बनाए गये थे। इनके स्वास्थ की सुरक्षा और जीवन बीमा जैसे अधिनियम भी बनाए थे।'

डॉ. अम्बेडकर ने श्रमिक वर्ग की स्त्रियों के लिए जो कानूनन श्रम करके विरासत तैयार की थी आज उन महिलाओं को उनकी विरासत नहीं मिल पा रही है। क्रेच का लाभ भारत में उन्हीं महिलाओं के बच्चों को मिल पा रहा है जो सरकारी या गैर सरकारी नौकरियों में सेवारत हैं। दैनिक श्रमिकाओं को इस तरह का कोई लाभ नहीं मिल पा रहा है, क्योंकि वे न तो शिक्षित हैं और न संगठित हैं। शारीरिक श्रम से जुड़ी अधिकांश स्त्रियां दलित, आदिवासी और अति पिछड़े वर्ग से ही आती हैं। आज के समय में इनकी पारिवारिक और आर्थिक स्थिति बेहद चिंतनीय बनी हुई है।

डॉ. अम्बेडकर ने 'हिन्दूकोड बिल' जैसा कानून देकर देश की सभी महिलाओं की चिंता की थी। इसलिए वे सिर्फ दलित स्त्रियों के उन्नायक नहीं थे। हां, इतना अवश्य है कि उनकी नजर इन कमजोर दलित स्त्रियों की ओर भी थी। इसीलिए वे उनकी सभाओं को संबोधित करते थे। वे कहा करते थे कि 'दूसरों की सहायता पर जीना मत सीखो, स्वाबलंबी बनो।' 30 सितम्बर 1935 को उन्होंने महिलाओं को संबोधित करते हुए कहा था–''अगर आदमी गलती कर रहा हो तो महिलाओं को उसके विरूद्ध विद्रोह करना चाहिए। सारे समाज की प्रतिष्ठा प्रगति और कीर्ति नारियों के हाथ में होती है।''(वहीं, 92)

यहां डॉ. अम्बेडकर का चरित्र नारीवादी चिंतक सिमोन द वोउवार की तरह उभर कर आया है। स्त्रियों को सबसे पहले स्वाबलंबी होने की बात कहते हैं। सिमोन भी कहती हैं और डॉ. अम्बेडकर भी। स्त्रियों को पुरूषों के समान बराबरी की चेतना और इसे पाने के लिए डॉ. अम्बेडकर उन्हें विरोध और अधिकार–बोध की शिक्षा दे रहे थे। वे दलित स्त्रियों को पढ़ने और अपनी बेटियों को पढ़ाने की बात भी कहते थे, जो स्त्रियां पढ़ी–लिखी नहीं थीं उनसे वे कहते थे कि अपनी बेटियों से कहो रोज डायरी लिखने की आदत बनाएं। वे उनके रहन–सहन में भी सुधार की बात लगातार कहते थे।

इस तरह बाबा साहब डॉ. बी.आर. अम्बेडकर ने भारतीय समाज में सेवा संघर्ष और संकल्प की एक बहुत ही खूबसूरत विरासत छोड़ी थी, मगर उनकी विरासत पर लगातार हमले होते रहे हैं। इस बात की पुष्टि विगत वर्षों में घटित घटनाओं से की जा सकती है। उदाहरण के लिए पिछले माह 'अखिल भारतीय दलित लेखिका मंच' का एक दल जिसमें रजनी तिलक, प्रो. हेमलता महिश्वर, मालती, कीर्ति और इन पंक्तियों की लेखिका ने हरियाणा के जिला पानीपत के दो गांवों क्रमशः उरलाना कलां और खंदरा में उन परिवारों से मिल कर जायजा लिया जिसमें 11 वर्ष की दलित बच्ची को बलात्कार के बाद मार कर फेंक दिया गया था, तो दूसरी घटना में बी.एस.सी. में पढ़ने वाली बच्ची के साथ बलात्कार करने की कोशिश की गई। उसे धमकाया, डराया गया। नतीजतन परिवार को उसकी पढ़ाई बीच में बंद करानी पड़ी। दलित लड़कियों के लिए बिगड़ते वातावरण का जायजा जैसे हाल ही में घटित कुछ अन्य घटनाओं के आधार पर लिया जा सकता है–

उत्तर प्रदेश में जिला उन्नाव के 'सथनी बाला खेड़ा' गांव में पढ़ने वाली एक 18 वर्षीय दलित लड़की को जिंदा जलाकर मार दिया। लड़की का पिता नहीं है। वह अपने परिवार के लिए साप्ताहिक बाजार से साईकिल चलाकर घर का कुछ सामान खरीदने जा रही थी। यह खबर दैनिक समाचार पत्र ('जनसत्ता' 24 फरवरी, 2018) में प्रकाशित है। इसी तरह 10 मार्च 2018 के दैनिक समाचार पत्र 'जनसत्ता' के अनुसार, ''बलिया जिले के भीमपुरा क्षेत्र में कथित रूप से ब्याज की रकम अदा न कर पाने के कारण एक दलित महिला को जलाकर मार डालने का मामला सामने आया है।

पुलिस अधिक्षक अनिल कुमार के अनुसार ''भीमपुरा थाना क्षेत्र में जजौली गांव की रहने वाली रेशमा देवी (45) वर्ष नामक दलित महिला कल रात घर पर सो रही थी। करीब दो बजे उस पर कथित रूप से मिट्टी का तेल छिड़ कर उसे आग लगा दी गई, जिससे वह गंभीर रूप से झुलस गई।....अनिल कुमार ने बताया कि प्रथम दृष्टया ऐसा प्रकाश में आया है कि

रेशमा देवी ने सिद्दू से दो वर्ष पहले 20 हजार रूपए उधार लिया था जिसे लौटा भी दिया था। हालांकि महिला पर ब्याज की धनराशि बकाया होने की बात सामने आ रही है।'' फेसबुक से तो यह भी खबर आई है कि 20 हजार रूपये का 2 लाख ब्याज अदा कर दिया था। उसके बाद भी ब्याज की राशि शेष बची थी, जिसे अदा न करने के कारण उक्त घटना घटी। यह ब्याज की राशि अनुचित और नैतिक रूप से नयाय संगत नहीं थी।

पिछले वर्ष उत्तर प्रदेश के संभल जिला में 'गंगुरा' गांव में '11वीं कक्षा में पढ़ने वाले राहुल नामक दलित लड़के को इसलिए बुरी तरह मारा गया कि वह साफ कपड़े पहन कर, बालों में तेल डालकर मांग निकाल कर मोटर साइकिल पर स्कूल क्यों जाता है। उसके छोटे भाई को गायब कर दिया गया। उसकी रिपोर्ट पुलिस ने नहीं लिखी है और न राहुल का भाई मिला है। यह स्थितियाँ लोकतंत्र के लिए खतरा बनी हुईं हैं। दलितों पर होने वाले ये जातीय उत्पीड़न क्या राष्ट्र को कमजोर नहीं कर रहे हैं? दलित राष्ट्र के सम्मान जनक नागरिक हैं। यह राष्ट्र का अपमान भी है। लोकतंत्र में प्रत्येक नागरिक की रक्षा करना, उसके विकास की जिम्मेदारी राज्य की है। वह इससे इंकार नहीं कर सकता। राहुल की छोटी चचेरी बहन जो कक्षा छह में पढ़ती है उसे दबंग साधू ने नल से पानी न पीने देने की घटना उसके बाद उसके बचाव में आए उसके पिता पर जानलेवा हमला हुआ। यह बात तब सामने आई जब दैनिक अमर उजाला ने वहां की खबर स्थानीय पेज पर छापी थी।

इस तरह एक दो नहीं लगातार दलित लड़कियों और दलित–स्त्रियों के साथ जातीय हमले हो रहे हैं। 2013 में इसी तरह की एक घटना पर संज्ञान लेते हुए प्रधान न्यायाधीश अल्तमस कबीर ने अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस के अवसर पर कलकत्ता उच्च न्यायलय द्वारा आयोजित एक कार्यक्रम में कही थी –

''दिल्ली में 16 दिसम्बर 2013 को जो भी कुछ हुआ वह दुखद व गलत था लेकिन साथ ही वह एक मात्र घटना नहीं थी। इसे एक रूप में विशिष्ट स्थिति बना दिया गया।.....निर्भया या दामिनी नाम की लड़की जिसकी बर्बर हमले में मृत्यु हो गई वह एक मात्र घटना नहीं थी। अगले दिन समाचार पत्रों ने घटना के खिलाफ आक्रोश में चीख–पुकार मचाई, लेकिन उसी दिन 10 वर्षीय दलित लड़की से सामूहिक बलात्कार और उसके बाद उसे जला दिए जाने की घटना को अंदर के पन्ने पर सिर्फ पांच से दस लाइनों में जगह दी गई।'' उन्होंने आश्चर्य के साथ कहा, ''दिल्ली सामूहिक बलात्कार पीड़िता के परिवार को सरकारों और विभिन्न निकायों ने भारी मुआवजा दिया। लेकिन उस छोटी दलित लड़की का क्या हुआ?''(10 मार्च 2013, राष्ट्रीय सहारा, नई दिल्ली) गत वर्ष हाथरस जिले के बूलीगढ़ी नामक गांव में एक वाल्मीकि लड़की का सवर्ण लड़कों के द्वारा रेप करने के बाद वर्बरता की गई जख्मी हालत में उसे अस्पताल ले जाया गया जहां उसकी लापरवाही में मौत हो गयी थी। प्रशासन द्वारा रात के अंधेरे में माता–पिता को बगैर बताये शव को जलाने की घटना से पूरे देश में आक्रोश ने आन्दोलन का रूप लिया था। इससे घटना ने देश को शर्मिंदा किया।

इस तरह बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर की विरासत का समाज कैसा बना है जबकि वे देश की सभी स्त्रियों को सशक्त और पूर्ण नागरिक के रूप में विकसित हुआ देखना चाहते थे। इसीलिए उनके सशक्तीकरण के लिए निरंतर सक्रिय थे। वे भारत के संविधान निर्माता के साथ–साथ बड़े स्त्री विमर्शकार भी थे। समाज की सभी वर्गो की स्त्रियों के सशक्तीकरण की चिंता उनके पूरे चिंतन और उनके जीवन में देखने को मिलती है। वे अपने परिवार तक सीमित नहीं रहे। पूरे दलित और

गैरदलित समाज स्त्रियों के उत्थान और उन्हें सामाजिक और कानूनी न्याय दिलाने के लिए संघर्शरत रहे थे। आज के समय में डॉ. बी.आर. अम्बेडकर द्वारा ज्ञान, शिक्षा, समता, स्वतंत्रता, स्वाबंलबन, इत्यादि उनके द्वारा छोड़ी विरासत है। आज उनकी विरासत को संभालना उसके महत्व को समझना, जहां उनकी विरासत धूमिल हो रही है उसके लिए उन्हीं की तरह संघर्ष करना भी उन्हीं की विरासत का हिस्सा है।

1/122, वसुन्धरा,गाजियाबाद–201012 (उ.प्र.)
Mob. 9911043588

संदर्भः–

1. डॉ. बाबा साहेब आम्बेडकर–वसंत मून, नेशनल बुक ट्रस्ट, इण्डिया, प्रथम संस्करण–1991, पृ. 126
2. स्त्री उपेक्षित The Second Sex सीमोन द बोउवार, प्रस्तुति प्रभा खेतान, प्रकाशक– हिन्द पॉकेट बुक्स, जे. 40 जोरबाग लेन, नई दिल्ली 03, संस्करण–2002
3. स्त्री विमर्श और पहली दलित शिक्षिका–डॉ. श्यौराज सिंह बैचेन, प्रकाशन साहित्य संस्थान उत्तरांचल कॉलोनी, लॉनी बॉर्डर, गाजियाबाद, संस्करण–2009
4. गुलामगिरि–महात्मा ज्योतिबा फुले, संगता प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली, सं. 1995
5. बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाड्मय, खण्ड–9, प्रकाशन अम्बेडकर प्रतिष्ठान, कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, संस्करण–1998
6. जनसत्ता दैनिक हिन्दी समाचार पत्र, 24 फरवरी 2018
7. जनसत्ता दैनिक हिन्दी समाचार पत्र, 11 मार्च, 2018
8. जनसत्ता दैनिक हिन्दी समाचार पत्र, 17 जुलाई 2017

इक्कीसवीं सदी के हिन्दी संगीत पर पाश्चात्य प्रभाव

– दिनेश कुमार सैनी (शोधार्थी)

नयी सदी के सिनेमा ने समाज के हर वर्ग तक अपनी पहुंच बना ली है। अब गरीब से लेकर अमीर हर आदमी सैलफोन में सिनेमा समेट कर चलता है। सिनेमा ने इस सदी में अपना तीव्रतम आधुनिकीकरण कर व्यापक स्तर पर स्वयं में परिवर्तन प्रस्तुत किये हैं। सिनेमाई केमरों ने तो जीवन के विविध क्षेत्रों में प्रासंगिकता सिद्ध कर आज के मानव की रोजमर्रा की जिन्दगी को सहज और सुविधाजनक बना दिया है। इक्कीसवीं सदी का हिन्दी सिनेमा पाश्चात्य असर में अपने आपको बहुआयामी परिवर्तनों से रूबरू करा रहा है। पश्चिम के प्रभाव में मौजूदा दौर का हिन्दी संगीत पहले से काफी कुछ बदल गया है। तकनीकगत तरक्की और मौलिकता का अभाव इस कदर हिन्दी संगीत में बदलाव लेकर आया है कि मेलोडी और शास्त्रीय संगीत सुनने वाले महास्थी व उस्ताद इस परिवर्तन को पचा नहीं पा रहे हैं।

भारतीय संगीत में शास्त्रीय संगीत, लोकसंगीत, सरल संगीत, समसंगीत इत्यादि सांगीतिक शैलियों का संतुलन रहा है। चूंकि हिन्दी सिनेमा ने पश्चिमी जगत से कई पहलुओं को सिनेमा में ईजाद किया, इसलिए पाश्चात्य संगीत का प्रभाव भी चित्रपट पर पड़ा। गायन, वादन एवं नृत्य इन तीनों ही सांगीतिक पक्षों पर पश्चिमी संगीत का स्पष्ट असर नयी सदी की सर्वप्रमुख विशेषता है। दरअसल संगीत लयात्मक ध्वनियों का कलात्मक एवं वैज्ञानिक संयोजन मात्र ही नहीं वरन् रचनात्मक लम्हों का वाद्ययांत्रिक एवं आत्मिक प्रस्फुटन भी है। इक्कीसवीं सदी में हिमेश रेशमियाँ, शंकर महादेवन, ए.आर. रहमान, अनु मलिक सरीखे सुर साधकों ने पश्चिम की धुनों के मिश्रण से कई फिल्मों का संगीत तैयार किया। विगत सदी में लक्ष्मीकांत प्यारेलाल,

नदीम श्रवण, आर.डी. बर्मन, नौशाद जैसे संगीतकारों ने शास्त्रीय संगीत की आधारशिला पर मधुर एवं कर्णप्रिय संगीत तैयार किया, मगर नयी सदी में यह सिलसिला जारी नहीं रह सका। नयी सदी के गायकों और संगीत निर्देशकों ने अमेरिका और इंग्लैण्ड में पनपे पॉप म्यूजिक से प्रभावित होकर काम किया। पॉप म्यूजिक की विश्वव्यापी लोकप्रियता से हिन्दी फिल्म संगीत भी बच न सका। भूमण्डलीकरण ने इस संगीत शैली को विश्व के कोने–कोने तक लोकप्रिय बनाने में खासी भूमिका अदा की। पश्चिम के 'जॉज' एवं 'रॉक एण्ड रॉल' संगीत ने भी संगीत क्षेत्र में परिवर्तन पेश किये हैं। आधुनिक काल में भारतीय संगीत की विविध विधाओं पर पश्चिम का असर दृष्टिगोचर होता है। जहां पहले रागात्मक प्रभाव (Melody) पर खास नजर संगीतकारों की होती थी वहीं पाश्चात्य प्रभाव से आज समूहगान के साथ वाद्यमंत्रों का अतिरेक प्रयोग किया जाने लगा है जिनसे पार्श्व ध्वनियों के रूप में स्वर संक्रम (Harmony) उत्पन्न किये जाते हैं तथा भिन्न–भिन्न स्वरों में परिवर्तन करके हारमनी का पुट देने का अत्यधिक प्रयास हो रहा है। इस प्रकार निसृत संगीत पारम्परिक रागात्मक प्रभाव के मुकाबले बिल्कुल अलग और हैरत अंगेज होता है।

नयी सदी की हिन्दी संगीत निर्मिति में अनेक पाश्चात्य वाद्ययंत्रों का उपयोग बढ़ रहा है, उदाहरणार्थ वायलिन, हारमोनियम, गिटार आदि। आज के संगीतकारों में पाश्चात्य संगीत का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगत होता है। गीत की धुन और उसकी लय तथा उसे गाने के अंदाज तक में पश्चिम का रंग दिखलाई पड़ता है। बप्पी लाहिड़ी का 'डिस्कोडांसर' गाना इस संदर्भ में उल्लेखनीय था। आज की फिल्मों में पश्चिमी संगीत बीटल, पॉप रैप तथा डिस्को संगीत की धूम मची हुई है। डिस्को संगीत तो लगभग हर फिल्म में नजर आ जाता है। आज के शीर्षस्थ सितारे आदित्य रॉय कपूर, रणबीर कपूर, वरूण धवन, रितिक रोशन, टाइगर श्रॉफ, कार्तिक आर्यन इत्यादि सभी डिस्को संगीत को न सिर्फ रील लाइफ में जीते हैं वरन वास्तविक जिन्दगी में भी इसका भरपूर आनन्द बॉलीवुड दावतों एवं सामूहिक उत्सवों के दौरान उठाते हैं। वाद्ययंत्रों में इलेक्ट्रिक गिटार ने संगीत में क्रांति सा आभास कराया है। इस वाद्ययंत्र से रिम नित्य प्रति तेज होती जा रही है तथा ज्यादातर लाउड म्यूजिक बनने लगा है। इस लाउड म्यूजिक को नये जमाने का दर्शक काफी पसंद कर रहा है।

बाबा सहगल, दिलेर मेंहदी, सागरिका, अलीशा, लकी अली, मीका सिंह, हन्नी सिंह, बादशाह, गुरू रंधावा आदि का तेज और धमाकेदार म्यूजिक नवयुवकों के दिलों की धड़कन बन चुका है। पश्चिमी सभ्यता जिस प्रकार हमारे ऊपर हावी हो रही है उसी प्रकार हिन्दी संगीत में भी पश्चिम का प्रभाव उत्तरोतर बढ़ रहा है। मौजूदा भारतीय ऑर्केस्ट्रा में तकनीक का अनुकरण और उसमें विभिन्न वाद्यों में निरंतर वृद्धि पश्चिमीकरण का द्योतक है। एक समय था जब भारत में शास्त्रीय संगीत एवं लोकसंगीत का वर्चस्व था पर आज ऐसा नहीं है। यह सही है कि पाश्चात्य ढंग की हल्की–फुल्की धुनों का मिश्रण बीसवीं सदी के संगीतकारों ने ही प्रारम्भ कर दिया था परन्तु आजकल यह मिश्रण इतना ज्यादा हो चला है कि अब भारतीय शास्त्रीय संगीत का स्वाद तकरीबन नदारद सा हो गया है। आजकल संगीत बनाने में रियाज, रचनात्मक समझ एवं नैसर्गिक प्रतिभा के स्थान पर तकनीक एवं आधुनिक इस्ट्रमेंट्स की ज्यादा अहमियत हो गई है। पुराने गीतों के रीमिक्स बनने में भी तकनीक एवं वाद्ययंत्रों की प्रमुख भूमिका रहती है। आधार के रूप में भारतीय संगीत शैली एवं सजावट के लिए अत्यधिक वाद्ययंत्रों का सहारा आज के रीमिक्स म्यूजिक के लिए वरदान बन चुका है। हिमेश रेशमियाँ के 'जारा–झूम–झूम' गाने से लेकर 'तू लड़की ब्यूटीफुल, कर गयी चुल' तक पश्चिमी धुनों, पॉप म्यूजिक की झलक एवं डिस्को कल्चर का तड़का स्पष्ट नजर आता है।

आधुनिक काल में हिन्दी फिल्मों का नृत्य पश्चिम के बैले नृत्य से असरदार तरीके से प्रभावित है। रंगमंच का प्रभाव ग्रहण कर हिन्दी फिल्मों का डांस पहले जैसा नहीं रहा। पर्दे पर खेतों एवं उत्सवों के दौरान नृत्य करने वाले कलाकार अब डिस्कों में थिरक रहे हैं। भारतीय नृत्य क्रियाएँ आज के अभिनेता विस्मृत करते जा रहे हैं क्योंकि युवा पीढ़ी को वो पसंद नहीं है, अब तो पश्चिम की नृत्य शैलियों और डांस स्टेप्स को सिखाने वाले नृत्य निर्देशक भी अच्छा खासा पैसा बटोर रहे हैं। रेमो डिसूजा एवं प्रभुदेवा ने अपनी नयी और अनुकरणात्मक प्रवृत्ति से तैयार की गयी नृत्य क्रियाओं से दर्शकों को आकर्षित किया है। भारतीय लोक नृत्य घूमर, भांगड़ा, गरबा–चकरी अब सिने पर्दे पर यदा–कदा ही नजर आते हैं।

इस प्रकार निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि नयी सदी की हिन्दी फिल्मों में गायन, वादन एवं नृत्य तीनों स्तरों पर ही पश्चिम की छाप है। संगीत में मेलोडी की जगह शोरगुल ज्यादा हावी होता नजर आ रहा है। संगीत की वजह से कामयाब फिल्मों का दौर अब गुजर चुका है। आज की फिल्मों में इस तरह के गाने बनने लगे हैं जो थियेटर से बाहर निकलते ही भुला दिये जाते हैं। अब तो हिन्दी फिल्मों में पाश्चात्य वाद्ययंत्रों ट्रम्पेट, गिटार, पिआनो, मैण्डोलियन, क्लारिनेट, माउथ ऑर्गन, साइडड्रम, ट्राई एंगिल, कैटिल ड्रम्स, टैम्बोराइन एवं जाइलोफोन से बना म्यूजिक ढोल, वीणा, शहनाई एवं बाँसुरी से बने मधुर संगीत पर भारी पड़ रहा है। मौजूदा हिन्दी संगीत के लिए प्रसिद्ध सिने समीक्षक जयप्रकाश चौकसे का कथन "वर्तमान संगीत में मेलोडी गायब है, यह संगीत के लिहाज से शोरगुल का कालखण्ड है'' प्रासंगिक जान पड़ता है।

दिनेश कुमार सैनी
शोधार्थी हिन्दी विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

प्लाट नं. 17, श्रीराम विहार विस्तार
मान्यावास, मान सरोवर, जयपुर–302020 (राज.)
मोबा. 91 8742070874

हिन्दी की दलित कहानियों में विशेष नारी पात्र

– डॉ. दीपिका परमार

भारतीय समाज पुरूष प्रधान व ब्राह्मणवादी प्रकृति का समाज है। हमारे देश की स्त्रियाँ इक्कीसवीं सदी में पुरूष के समान सम्मान एवं अधिकार पाने के लि, संघर्ष कर रही हैं। उसी स्थिति में दलित वर्ग की महिलाओं की सामाजिक शैक्षणिक और आर्थिक स्थिति सवर्ण महिलाओं की अपेक्षा अधिक पिछड़ी, दयनीय और कमजोर है। सदियों से स्त्रियों पर धर्म के नाम पर अनगिनत अत्याचार होते चले आ रहें हैं। दलित स्त्री तो शोषितों में भी शोषित हैं। स्वतंत्रता और समानता के अधिकार से तो उसे सदा से ही वंचित रखा गया है। महिला चाहे संभ्रात वर्ग की हो या निर्धन वर्ग की, महिलाँ, दलित ही हैं जब तक महिलाँ, पुरूष की दृष्टि में औरत है, तब तक कन्या से औरत होने तक के सफर में आज, प्रत्येक पड़ाव जैसे – शिक्षा, बाल–विवाह, गरीबी, दुश्चरित्रता, श्रमिक–समस्या, अप्राकृतिक यौन–शोषण, वधुओं को जलाने वाली आधुनिक संस्कृति, बलात्कार से उत्पन्न बच्चे का अधिकार, लिंग परीक्षण, अशिक्षा और अन्याय शोषणों के विरुद्ध लेखनी और आवाज़ नही उठाई जाएगी तब तक हमारे समाज में जागृति नहीं आ पाएगी। जब तक महिलाओं को समान अधिकार नहीं मिलते तब तक महिलाएँ दूसरे दर्जे की नागरिक ही बनी रहेंगी। अपने अधिकारों के प्रति सकारात्मक जन–जागरण का बीड़ा स्वयं महिलाओं को उठाना पड़ेगा। सदियों से महिलाओं को दासता के बंधनों में जकड़कर रखा गया है, ताकि वे किसी भी वय में स्वतंत्र न हो सके। स्त्री के मानवीय अधिकार को धर्म के नाम पर छीना गया था। मनु स्त्री को किसी भी अवस्था में स्वतंत्रता देने के पक्ष में नहीं थे। महात्मा ज्योतिबा फुले और उनकी पत्नी सावित्री फुले ने

नारी–शिक्षा पर अत्यधिक जोर दिया। खास तौर पर स्त्री और शुद्रों की शिक्षा के लिए, उन्होंने अपना पहला कदम उठाया।

(1) सुशीला टाकभौरे की कहानी 'सिलिया' की नायिका सिलिया दलित शिक्षित युवती है। वह सवर्णो द्वारा किये, जाने वाले छुआछूत, भेदभाव के विषय में गंभीरता से विचार करती है। सवर्णो के समान सम्मान, इज्जत और बराबरी का दर्जा पाने के लिए, वह 'झाडु' को अपने समाज के लिए, दुष्चक्र समझती है। अपमानजनक गुलामी के चिह्न को छोड़कर वह हाथ में कलम थाम लेती है। अपना भाग्य ,एवं अपने समाज का भाग्य स्वयं अपनी कलम से बदलने का दृढ़ निश्चय करके बीस वर्ष बाद वह उस स्थान पर पहुँचती है, जहाँ भरी सभा में विशाल जनसमूह के बीच उसको सम्मानित किया जाता है। यहाँ पर दलितों के हाथ में झाडू थमााने के विषय में सिलिया के यह विचार है कि –

''इस समाज में पैदा होना नहीं होना तो हमारे हाथ में नहीं था, परंतु इस अपमानजनक गुलामी के चिह्न को छोड़ना तो हमारे हाथ में है। यह हम अवश्य कर सकते हैं।''

सिलिया के यही विचार उसे विशेष बनाते हैं। सिलिया मात्र अपनी ही प्रगति नहीं चाहती, बल्कि वह ,एक ,ऐसा मार्ग बनाना चाहती है, जिस पर चलकर दलितों को सम्मानजनक जीवन जीने का अधिकार मिले। उसे अपने लक्ष्य की प्राप्ति भी होती है। सिलिया दलित युवतियों के लिए एक आदर्श नारी पात्र है, जो यह सिद्ध करती है कि व्यक्ति जन्म से नहीं कर्म से महान बन सकता है, क्योंकि जन्म व्यक्ति की शक्ति से परे है, परंतु कर्म व्यक्ति के वश में है।

सिलिया सवर्णों की दोगली मानसिकता से भलीभाँति परिचित हैं। तभी तो सवर्ण नेता सेठी द्वारा दिये गये ''शुद्र वधू चाहिए,'' जैसे सुनहरे विज्ञापन की आड़ में छिपे पाखंड को वह बखूबी समझ लेती है। सवर्णो की लड़ाई में ढाल बन जाना उसे पसंद नहीं। अपने आत्मसम्मान के प्रति वह इतनी सजग है कि किसी भी सूरत में उसे गँवाना नहीं चाहती। उसके शब्दों में ''हम क्या इतने लाचार हैं, आत्मसम्मान रहित हैं, हमारा अपना भी तो कुछ अहंमभाव है। उन्हें हमारी जरुरत है, हमको उनकी जरुरत नहीं। हम उनके भरोसे क्यों रहे? अपना सम्मान हम खुद बढ़ाएगें।''

अपनी अस्मिता की कीमत पर उसे ''दिखावे की चार दिन की इज्जत'' नहीं चाहिए। इतना मात्र ही नहीं, सिलिया संकल्प भी करती है वह पढ़ेगी, पढ़ती ही रहेगी, शिक्षा के साथ अपने व्यक्तित्व को भी समृद्ध बनाती रहेगी। साथ ही साथ, उन सभी परंपराओं के कारणों का पता लगाएगी जिन्होंने उन्हें अछूत बना दिया है। इस संदर्भ में भारती गोरे का कथन है –

''प्रेमचंद की सिलिया (संदर्भः गोदान) से लेकर सुशीला टाकभौरे की सिलिया तक दलित स्त्री का संघर्ष कठोर रहा है। अन्याय को सहने से लेकर अन्याय के कारणों का पता लगाकर उन्हें मिटाने के संकल्प तक की उसकी मानसिकता उसके बदले हुए, तेवर का संकेत देती है। अब दलित स्त्री को अपनी मुक्ति का मार्ग मिल चुका है और वह उस मार्ग पर अग्रसर भी हो चुकी है।''

गरीबी, अशिक्षा दलितों की चेतना को सुलाये रखती है, जबकि शिक्षा प्राप्त कर सिलिया जैसी दलित युवती में जब चेतना जागृत होती है, तब उसकी माँ यहाँ तक की उसकी नानी भी सिलिया के विचारों से सहमती जताती हैं। यहाँ तीन पीढ़ी की दलित स्त्रियों में आई दलित चेतना को कहानीकार ने बखूबी चित्रित किया हैं।

(2) 'मंगली' डॉ–कुसुम मेघवाल की कहानी की नायिका मंगली एक गरीब, अशिक्षित आदिवासी मजदूरिन है। उसका पति गरीबी के कारणा एवं दवाईयों के अभाव में मर चुका है। मंगली पति की मृत्यु का शोक द्वार पर बैठकर नहीं मना सकती। आदिवासियों की

सबसे बड़ी चुनौती है, उनकी बेरोज़गारी। ठेकेदारों की चंगुल में फँसे आदिवासी गाँव छोड़कर शहरों में जाते हैं। तो वहाँ भी सिवाय बीमारी–मौत के अलावा कुछ नहीं पाते। मंगली पति की मृत्यु के बाद अकेले परिश्रम करके जीवन जीने का निर्णय लेती है। ठेकेदार उसे आश्रय देकर, धन, वस्तुओं का लोभ देकर अपनी वासनापूर्ति करना चाहता है, किन्तु मंगली के अंदर छिपी नारी शक्ति का ज्ञान उसे नहीं था। वह तो मंगली को बेचारी, अबला, गरीब और मजबूर समझकर उसे पाना सरल समझता था। मंगली उसकी वासनादृत्ति को जानकर उसे चेतावनी देते हुए कहती है–

''ठेकेदार साहब मुझे पता नही था कि आपके अंदर एक शैतान छिपा है और आप मुसीबत में मेरी मदद करने के बहाने अपना उल्लू सीधा करने के लिए मुझे यहाँ लाए हैं। किंतु मैं भी साफ कहे देती हूँ कि मैं भी एक भीलनी की जाई हूँ जो जंगल में लकड़ियाँ काटते हुए भी बच्चे को जन्म दे देती है और अपना नाल स्वयं काटकर बच्चे को गोद में उठाकर घर चली आती है। इसलिए अब और आगे बढ़ने की कोशिश मत करना वरना बकरे–सा काट के रख दूँगी।''

मंगली जब चूल्हे की लकड़ी से उस पर वार करती है, तो ठेकेदार बेसुध हो जाता है।

मंगली इन्हीं विशेष गुणों के कारण एक आदर्श आदिवासी स्त्री के रुप में हमारे समक्ष आती है। गरीबी एवं परिस्थितिवश मंगली ठेकेदार के समक्ष आत्मसमर्पण कर देती तो, इस कहानी में कोई विशेष बात नहीं होती। आत्मसम्मान एवं आत्मरक्षा के गुण हर नारी में होना अति आवश्यक है। नारी चेतना एवं दलित चेतना की बात मंगली के चरित्र में देखी जा सकती है। ठेकेदार के खिलाफ पुलिस थाने पहुँचकर रिपोर्ट दर्ज करवाकर उसे गिरफ्तार करवाना मंगली जैसे साधारण पात्र को असाधारण बना देती है। क्योंकि सामान्य दलित महिला इतना साहस ही नहीं बटोर पाती, कि बिना किसी की सहायता के अकेले ही अपने दोषी को दंड दिलवा सके। दलित नारी में वर्तमान समय में आनेवाली जागरुकता मंगली जैसे पात्रों द्वारा दिखाकर कहानीकार ने आधुनिक युग में दलित नारी में आने वाली चेतना को हमारे समक्ष साकार रुप में उपस्थित कर दिया है। मंगली का पात्र पाठकों की स्मृति में सदा बना रहेगा।

(3) 'सुनीता' रजत रानी 'मीनू' द्वारा रचित कहानी की नायिका सुनीता दुहरे शोषण को झेलती है। एक तो इसलिए की वह स्त्री है, दूसरे इसलिए, क्योंकि वह दलित स्त्री है। दलित महिलाओं की त्रासदी यह है कि उन्हें एक गाल पर ब्रह्मवद का तो दूसरे गाल पर पितृसत्ता का थप्पड़ खाना पड़ता है। उपेक्षापूर्ण व्यवहार का अहसास असह्य होता है। सुनीता से अधिक महत्त्व उसके छोटे भाई को दिया जाता है। यहाँ तक कि उसकी पढ़ाई को भी अधिक जरूरी एवं महत्त्वपूर्ण नहीं समझा जाता। ऐसे समाज में चारों ओर केवल पुरूषों का बोल बाला था। सुनीता के लिए सवर्ण भी ताने मारते हुए कहते –

''चमारी पढ़ लिखकर अफसर बनेगी। गाँव में बड़ी जाति के लोग तो लड़कियों को पढ़ाना जरूरी नहीं समझते पर छेदा चमार को अपनी औकात का शायद पता नहीं है।

सुनीता के माता–पिता बेटे–बेटी में भेद–भाव रखते है एवं पुत्र की शिक्षा एवं देखभाल के लिए पुत्री की शिक्षा को हमेशा गौण समझते हैं। अपने ही माता–पिता द्वारा किए जाने वाली अवहेलना सुनीता के लिए असहनीय थी, किन्तु सुनीता उन युवतियों में से नहीं थी, जो मुसीबतों के समक्ष कमजोर पड़ जाए। माता–पिता का कठोर व्यवहार होने पर भी विवाह के प्रस्ताव के समक्ष वह निडरता से इन्कार करने का साहस करती है और और पढ़ने की इच्छा जताती है। वह पढ़–लिख कर शिक्षिका बनती है, किन्तु उसका लक्ष्य आई.ए.एस. या आई.पी.एस की परीक्षा उत्तीर्ण

करना रहता है। लेखिका के शब्दों में–

"उसे अपने वर्ग की चिंता सदैव सताती रहती थी सुनीता स्वयंसेवी मंचों पर जोरदार भाषण दिया करती थी और भाषणों में वह हमेशा स्त्री एवं दलित वर्ग की उपेक्षा के कारणों का खुलासा करती और निवारणों पर जोर देती थी।''

सुनीता मात्र स्वयं के सुख–चैन के लिए नहीं जीना चाहती, वह अपने दलित समाज के पुरूषों एवं स्त्रियों में चेतना लाना चाहती है। सुनीता दलित बच्चों को ट्युशन पढ़ाती ताकि आगे की पढ़ाई में आर्थिक मदद उसे मिलती। उसे सदैव दलित वर्ग के कल्याण की चिंता रहती। मन ही मन वह चिंतन किया करती। वह दलित का उत्थान करना चाहती थी। साथ ही अपने भाषणों में वह हरिजन शब्द को दलितों के लिए गाली बताती थी। सुनीता को अपने कैरियर की चिंता थी, किन्तु कलक्टर बनने के अपने सपने को वह भूल कर समाज के हितार्थ वह राजनीति में प्रवेश करती है और जीत भी प्राप्त करती है। वह अपने पिता एवं सवर्ण समाज के उन लोगों के समक्ष वह सिद्ध करके दिखा देती है, कि बेटे से भी अधिक एक बेटी अपने माता–पिता का नाम एवं कुल को रोशन करने की क्षमता रखती है। दलित ही नहीं सुनीता सवर्ण समाज के लिए एक मिसाल बन जाती है।

यहाँ सुनीता का संकल्प, उसकी इच्छाशक्ति अपनी शक्ति का परिचय देने के उसके हठ एवं संघर्ष की आग में तप कर वह स्वर्ण की तरह चमकने लगती है। सुनीता में दलित चेतना एवं नारी चेतना दोनों समान रूप में दिखाई देते हैं। सुनीता अपने परिवार, समाज एवं सवर्ण समाज में नारी शक्ति की अमिट छाप छोड़ती है।

(4) सूरजपाल चौहान की 'साजिश' कहानी में नायिका शान्ता ने भले ही उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं की थी, किन्तु वह अपने पढ़े–लिखे पति नत्थू से अधिक बुद्धिशाली, स्पष्टवक्ता एवं दूरदर्शी थी। नत्थू बैंक मैनेजर के पिगरी लोन दिलवाने के मश्वरे के षड़यंत्र को नहीं समझ पाता, जबकि शान्ता समझ जाती है, कि मैनेजर जैसे सवर्ण लोग आज भी दलितों को उनके परंपरागत कार्य में ही लगा, रखना चाहते हैं, ताकि दलितों में जागृति, समानता का अधिकार, सम्मानपूर्ण जीवन जीने का अवसर उन्हें न मिल सके। दलित मात्र झाड़ू लगा सफाई कार्य करें ताकि वे हमेशा निष्क्रिय ही रहें। शान्ता के नेतृत्व में एक विशाल जन–समूह बैंक की ओर चल देता है। कल की साधारण सी दलित स्त्री शान्ता जिला प्रशासन, मैनेजर, पुलिस आदि सवर्ण लोगों को हिलाकर रख देती है। शान्ता अपने अधिकारों एवं सरकार की दी जाने वाली लोन की सहायता को सरलता से न मिलने पर उसे छीनना भी जानती है। दलितों में शिक्षा से चेतना आई है, परिणामस्वरुप दलित लोग परंपरागत पेशों–कार्यो से विमुख हुए हैं तथा सम्मानजनक माने–समझे जाने वाले दूसरे कार्यो को अपनाने के प्रति सचेत हुए हैं। शान्ता के विषय में कथन है कि–

''यह तो नायक की पत्नी का साहस और जुझारूपन है कि वह पति द्वारा मानसिक रूप से सुअर–फार्म के लिए ऋण लेने को तैयार हो जाने के बावजूद टेंम्पो के लिए ही ऋण लेने पर अड़ जाती है और बैंक मैनेजर को टेंम्पो खरीदने के लिए ऋण लोन देना पड़ता है।''

आज शान्ता जैसी सजगता एवं साहस अन्य दलित स्त्रियों में बहुत कम देखने को मिलता है। बैंक मैनेजर को शान्ता ऐसा सबक सीखाती है, ताकि वह अपने अधिकार एवं पद का दुरुपयोग जीवन पर्यंत कभी नहीं करेगा। आज के दलित पुरूषों के साथ दलित स्त्रियों के लिए भी यह जरूरी है, कि वे शान्ता की तरह अपने अधिकारों के प्रति सदैव सजग रहें ,वं अपनी शक्ति एवं क्षमता को पहचानें। साथ ही अन्याय एवं अत्याचार के खिलाफ आवाज़ उठाने में हिचकिचायें नहीं।

निष्कर्ष के रुप में कहा जा सकता है कि आज की

दलित नारी पहले की तरह अत्याचार सहकर खामोश नहीं रहती, वह जो अन्याय, शोषण, रूढ़िवाद अस्पृश्यता, परंपरागत जातीय शोषण, पारिवारिक शोषण, लिंग के भेदभाव आदि के समक्ष अपना विरोध प्रदर्शित करती हैं।

दीपिका रमणभाई परमार
25, डीम हाऊस, सर्वोदय नगर सोसायटी, नेक्शा शोरूम के निकट लुनावाड़ा हाईवे, गोधरा, जिला पंचमहल (गुजरात) 389001

संदर्भः—

(1) 'सिलिया' – दलित महिला कथाकारों की चर्चित कहानियाँ – सं–डॉ– कुसुम वियोगी
(2) 'मंगली' – दलित महिला कथाकारों की चर्चित कहानियाँ – पृष्ठ 33
(3) 'सुनीता' – दलित महिला कथाकारों की चर्चित कहानियाँ – पृष्ठ : 27, 60
(4) 'साजिश' – दूसरी दुनिया का यथार्थ – सं–रमणिक गुप्ता – पृ– 85

सुशीला टाकभौरे की कहानियों में वर्णित जाति, संघर्ष और नारी चेतना

– डॉ. धीरज वणकर

सुशीला टाकभौरे दलित साहित्य की प्रसिद्ध व वरिष्ठ लेखिका है। दलित लेखन में बहुत कम नारियों ने अपनी उपस्थिति दर्ज की है, उनमें से ख्याति प्राप्त रचनाकार के रूप में सुशीला जी का जिक्र करना आवश्यक है। उनके अतिरिक्त कौशल्या बैसंती, डॉ. तारा परमार, रजतरानी मीनू, रजनी तिलक, अनीता भारती, कुसुम मेघवाल, कावेरी, रजनी अनुरागी आदि का नाम लिया जा सकता है। दलित नारियों की रचनाओं में आप बीती मुख्य रूप से उजागर हुई है। सुशीला जी दलितों को कहती है–'हमें हमारी गलत व गन्दी आदतों का परित्याग कर शिक्षा व रोजगार के अवसरों को हाथ से नहीं जाने देना चाहिए। आर्थिक विपन्नता, सामाजिक असमानता, अनपढ़ता, अंध विश्वास,, नशाखोरी दलितों के पिछड़ेपन के मुख्य कारण हैं।'[1] यहाँ लेखिका ने दलित जागृति की बात की है। परिवर्तन जरूरी है, न सिर्फ व्यवस्था में, अपितु स्वयं स्त्री के भीतर भी।

सुशीला टाकभौरे की महत्वपूर्ण कहानियों पर नजर डाले तो 'संघर्ष' नामक कहानी में छुआछूत की समस्या को उकेरा गया है। कथानायक शंकर संघर्ष करता है। शंकर चौदह साल का दलित लड़का है। जो अपने माता–पिता व नानी के साथ रहता है। उसकी नानी सफाई का काम करती है, जो शंकर को कतई पसंद नहीं है। वह परम्परित व्यवसाय से मुक्ति चाहता है तथा किसी से दबकर रहना नहीं चाहता। पढ़ाई करके गरीबी दूर की जाती है, ऐसा वह मानता है। गाँव के लोग दलित शंकर को परेशान करते हैं किन्तु शंकर सभी को मुँह तोड़ जवाब देता है। सभी लोग शंकर की शरारत पर उसके माता–पिता को शिकायत करने चले जाते है। अंत में शंकर के पिता गुस्से में आकर शंकर को पिटते है किन्तु बाद में दुःखी हो जाते है और गुस्से में कहते है–'बच्चा है....बच्चे घूम सकते ही है। मगर लोगों को हमारा बच्चा ही बुरा लगता है। न जाने लोग हमारे पीछे ही क्यों पड़े रहते है ? जहाँ देखो, जात–पांत की बात करके हमें नीचा दिखाते रहते हैं। जैसे हमारी कोई इज्जत ही नहीं है।'[2] शंकर नानी का लाया जूठन आंगन में फेंक देता है। नानी पर बहुत गुस्सा आता है। नानी को काम छोड़ देने को कहता है। तब नानी समझाती है–'बेटा मैंने शुरू से यही काम किया है। सभी जाने है कि मैं कौन हूँ। अब मैं यह काम छोड़ भी दऊ तो क्या मेरी जाति बदल जायेगी? जो जाति है वह तो रहेगी। काम करो चाहे न करो....कहलायेंगे हम भंगी ही....'[3] संघर्ष करके शंकर पहला मैट्रिक पासलड़का होता है।

गौरतलब कि दलित महिला कथाकारों ने एक नयी भूमि तैयार की है। दलित स्त्री की समस्या एवं स्वाभिमान को जब एक दलित महिला व्यक्त करती है, तो उसमें अनुभव की प्रामाणिता होती है। सुशीला जी

की 'सिलिया' नामक कहानी में भी जातिगत अपमान को रेखांकित किया गया है। इस देश में जाति इस कदर हावी है कि वह पीछा ही नहीं छोड़ती, जाति जाने का नाम ही नहीं लेती। सिलिया बड़ी कठिनाई से मैट्रिक पास करती है, कोई भी लालच रास्ते में भटका नहीं पाती हैं। सिलिया में पढ़ने–लड़ने और आगे बढ़ने की ललक है। वह खो–खो टीम की कैप्टन है। खेलकूद की प्रतियोगिता में वह अव्वल आई। उसकी सहेली हेमलता की बहन उसी तहसील में रहती थी, जहाँ खेलकूद स्पर्धा के लिये गये थे। दोनों उनके घर जाते हैं। सिलिया को बहुत प्यास लगी है, पर मौसीजी को जाति का पता चल गया था, इसलिए पानी का गिलास लेकर अंदर चली जाती है और गाडरी के कुएँ से पानी पीने के कारण सिलिया के मामा की बेटी मालती की मामी के द्वारा पिटाई ये दोनों जातिगत अपमान की घटनाएँ सिलिया की दृष्टि व जीवन को बदलने में अहं भूमिका निभाती है–पानी न मिलने पर सिलिया कहती है–'कितने मुखौटे चढ़ाकर रखते हैं लोग' वह आगे बढ़ने का दृढ़ संकल्प करती है–'मैं बहुत आगे पढूँगी, पढ़ती रहूँगी। उन परम्परागत कारणों का पता लगाऊँगी, जिन्होंने हमें समाज में अछूत बना दिया है। मैं विधा, बुद्धि और विवेक से अपने आपको ऊँचा साबित करके रहूँगी। किसी के सामने झुकूँगी नहीं। ना ही कभी अपना अपमान सहन करूँगी।'[4] लेखिका का जातिवाद तब सिर चढ़कर बोला, जब सिलिया की नानी खुश होकर बोल उठी–'इतनी बड़ी बन जा कि बड़ी जात का कहलाने वालों को अपने घर नौकर रख लेना।'[5] वस्तुतः यह एक अन्तर्मुखी कहानी है, जो सुधारवादी दृष्टिकोण से लिखी गई है।

दलित साहित्य के केन्द्र में मानव है। स्वतंत्रता, समता, बंधुता उसका उद्देश्य है। बाबा साहब अम्बेडकर की विचारधारा दलित–वंचित समुदाय तक पहुँच और दलितों में चेतना व जागृति आए वह इस साहित्य का लक्ष्य है। 'नई राह' नामक कहानी में नई राह की खोज बताई गई है। रामचंद, लालचंद एवं हरिचंद नई राह की ओर बढ़ते है। रामचंद अपने बेटे लालचंद को गरीबी व शिक्षा के अभाव के कारण आगे पढ़ा नहीं सका। लालचंद को परम्परित व्यवसाय ही करना पड़ता है किंतु अपने बेटे हरिचंद्र को इस कार्य से दूर रखता है वह उसे पढ़ाना चाहता है इसलिए रामचंद जागृत लोगों के साथ मिलकर 'जागरुक' नामक संस्था की स्थापना करते है। जिसमें दलितों की पढ़ाई एवं अपने पैरों पर खड़े हो सके। ऐसी व्यवस्था की जाती है। इस प्रकार एक नई राह ढूँढ़ ली जाती है। बाबासाहब ने भी कहा था कि 'शिक्षा शेरनी का दूध है। वस्तुतः लालचंद नहीं पढ़ पाया, अपने साथ जो हुआ वह अपने बेटे के साथ दोहराना नहीं चाहता इस बात की पुष्टि इन पंक्तियों में हुई है–क्या एक दिन उसका बेटा भी सफाई मजदूरों की लिस्ट में आ जायेगा–जैसा कि वह आ गया है? ऐसा कब तक चलेगा? कहीं न कहीं और कभी न कभी तो इस परम्परा को तोड़ना ही पड़ेगा।'[6] जागरुक संस्था अब 'अखिल भारतीय जागरुक सफाई कामदार समाज संस्था' का विशाल रूप ले लेती है। दलित लोग उद्योग के साथ जुड़कर कोई भी बेरोजगार गरीब नहीं रहेगा। अंत में उपराष्ट्रपति सभी लोगों की प्रशंसा करते हैं–'अब रामचंद के सपने कभी अधूरे नहीं रहेंगे, लालचंद जैसे लोगों का जीवन अच्छा बन सकेगा और हरिचंद जैसे नई पीढ़ी के होनहार नौनिहालों का भविष्य सुन्दर सुखद और सुरक्षित रह सकेगा। मगर यह तभी संभव हो सकेगा जब सभी लोग इस नयी राह पर चलेंगे।'[7] वाकई कहानी का शीर्षक सार्थक व उचित है।

'गलती किसकी है' नारी प्रधान कहानी है। पिछड़ी जातियों में आर्थिक दुर्व्यवस्था के कारण बहुत कम लोग शिक्षित होकर अच्छे पदों पर पहुँचे है। इक्कीसवीं सदी में दलितों की नई पीढ़ी उत्कर्ष की ओर कदम बढ़ा रही है। प्रस्तुत कहानी में यह बताया गया है कि बच्चों की अच्छी परवरिश करके उन्हें सही दिशा प्रदान की जा सकती है। सुनीता व अनीता दोनों सगी बहनें है और रमेश व महेश भी सगे भाई है। सुनीता दहेज लेन–देन में नहीं मानती है। दहेज वस्तुतः समाज में एक कलंक

है। दहेज के कारण माता–पिता को अपनी बेटियों के लिये पैसे न होते हुए भी कर्ज उठाकर या जमीन बेचकर दहेज देना पड़ता है। दहेज देना मजबूरी नहीं, बल्कि उसके खिलाफ आवाज उठानी चाहिए और इस कलंक से मुक्ति पानी चाहिए । सुनीता का पति बेटा–बेटी में फर्क नहीं मानता, वह अपनी तीनों बेटियों से बहुत प्यार करता है। वह अपनी बेटियों को खुद के पैरों पर खड़ा देखना चाहता है। आज बेटियाँ किसी भी क्षेत्र में कतई पीछे नहीं है। बेटियों ने भी क्या–क्या कर दिखाया है इससे हम सब भली भाँति परिचित है। सुनीता का पति इसीलिए कहता है कि ''हमारी बेटियाँ है तो क्या हुआ? हमारी बेटियाँ बेटों से कम नहीं हैं। हम उन्हें ही अपने बेटे मानेंगे। तुम चिंता नहीं करना, न ही बेटा न होने का दुःख मानना। वे लोग मूर्ख होते हैं, जो बेटे का मुँह देखने के लिए चार, छः, दस बच्चे पैदा करते हैं। बाद में उन्हें संभाल नहीं पाते हैं, उनका पालन–पोषण ठीक से नहीं कर पाते हैं। हमें न तो बेटों की राह देखना है और न ही अधिक बच्चे पैदा करना हैं, हमारे तीन बच्चे अच्छे हैं, बस इन्हीं की देखभाल और शिक्षा–दीक्षा अच्छे से करना है, ताकि वे अपने जीवन में सुखी रह सके।'[8] इस प्रकार बेटा–बेटी में भेदभाव न रखा जाय यह आज जरूरी है।

दरअसल हजारों वर्षों से भारतीय समाज की उपेक्षा की मार दलित समाज आज भी झेल रहा है। न चाहते हुए भी। 'मेरा बचपन' नामक कहानी में सुशीला जी ने बचपन की कटु स्मृतियों को बखूबी उकेरा है। प्रस्तुत कहानी की नायिका खुद सुशीला है। किस तरह गरीबी व जातिगत अपमान से संघर्ष करना पड़ा यह दर्शाया गया है। शिक्षा जैसे क्षेत्र में भी जाति का भूत सवार होता है, शिक्षक दलित छात्रों से भेदभाव रखता है। लेखिका ने कुछ परिवार की, कुछ गाँव की, कुछ समाज की एवं स्कूल की घटनाओं का जिक्र किया हैं। सुशीला जी स्कूल में पढ़ती थी तब की एक घटना ध्यानाकर्षक है कि सवर्ण बच्चे घर लौटते तो घर के बाहर उन पर पानी छिड़क दिया जाता, दूसरे कपड़े पहनने के लिये दिये जाते। सवर्ण नाक–भौं सिकोड़कर कहते–'न जाने कौन–कौन सी जात के बच्चों के साथ बैठकर पढ़कर आते हैं। सबकी छुआछूत घर में लाते हैं।'[9] यहाँ सवर्णों की मानसिकता उजागर हुई है। जातिगत भेदभाव उनके मन में इस कदर हावी है कि बात ही न पूछो! शिक्षक भी मनुवादी विचारधारा वाले थे। एक शिक्षक लेखिका से कहते है–'सुशीला तुम आगे क्यों बैठी हो? तुम्हें सबसे पीछे बैठना चाहिए। कोई भी अपनी जगह नहीं बदलेगा।'[10] यहाँ असली चेहरा उजागर हुआ है।

टूटता वहम एक महत्वपूर्ण कहानी है जिसमें समाज के बदलते मानस की भीतरी सच्चाई को रेखांकित किया है। तथाकथित लोग जोर–जोर से कहते है कि समाज में जातिगत भेदभाव अब नहीं है। समाज में जातिगत भेदभाव की भावना नहीं है, किन्तु सच्चाई कुछ और है। आजादी के सत्तर साल के बादभी 'जाति' दीवार बनकर खड़ी है। पिछड़े वर्ग के लोगों को पग–पग पर अपमान के कड़वे घूँट पीने पड़ते है। दलित कितना भी पढ़ा–लिखा हो, ऊँचे पद पर विराजमान हो किंतु उनकी पहचान काम से ही नहीं जाति से होती है। सुशीला टाकभौरे महाविद्यालय में प्राध्यापिका है जहाँ साथी महिला अध्यापिकाएँ ठीक व्यवहार नहीं करती इस कटु सत्य को आलोच्य कहानी में उकेरा गया है। जब एक प्राध्यापिका को लेखिका की जाति के बारे में पता चलता है तब उसे आश्चर्य होता है। लेखिका साफ कहती है–'आप कुछ भी समझें, लेकिन यह सच है मैं एस.सी. हूँ। इससे इतना आश्चर्य करने की बात नहीं है।'[11] पूरे स्टॉफ को पता चलते ही लेखिका के साथ व्यवहार बदल दिया। कभी–कभी कॉलेज की प्राध्यापिकाएँ फ्री समय में एक–दूसरे के घर खाना खाने की योजना बनाती। खाना खाते समय सब उनके साथ कोई भेदभाव नहीं रखते थे। एक बार लेखिका ने अपने घर भोजन के लिए प्राध्यापिकाओं को निमंत्रित किया। आमतौर पर आठ–नौ प्राध्यापिकाएँ खाने पर जाती थी किंतु लेखिका के घर पर केवल चार

ही प्राध्यापिकाएँ आती है। इसमें से दो का उपवास था औरों ने कोई न कोई बहाना बना दिया। दूसरी घटना है प्लाट खरीदकर घर बनाना चाहते थे किंतु शर्मा के कारण सपना अधूरा रह जाता है और प्लाट एक महीने के बाद बिक जाता है। आठ वर्ष के बाद लेखिका के पति के मित्र ने बताया कि–'भैया, बताना मत, कहाँ के चक्कर में थे? क्या शर्मा तुम्हारे साथ प्लाट खरीदकर और मकान बनाकर तुम्हारे पड़ोस में रहता? यह तो उसने पहले दिन ही सोच लिया था कि तुम्हारे साथ प्लाट नहीं खरीदेगा। भले ही जिंदगी भर किराये के मकान में रहेगा, मगर अच्छा मकान मिले तब भी तुम्हारे पड़ोस में नहीं लेगा। उसने यह बात कुछ लोगों को तभी बता दी थी। आप भी बड़े भोले हो, जो उसके झांसे में आ गये और महीना भर उसकी राह देखते रहे।'[12] यहाँ सवर्ण मानसिकता का भण्डा फोड़ हो गया है। वे कतई नहीं चाहते कि उनके पड़ौस में दलित हो।

दलित साहित्य परिवर्तन चाहता है। 'मुझे जवाब देना है' नामक कहानी में नायिका दलित है वह पढ़ी लिखी है फिर भी हिन्दू धर्म की कुरीतियों से ग्रसित है। इस कहानी की नायिका जब गले में लम्बा सा मंगलसूत्र पहनकर भाई साहब के सामने आती है, तब भाई साहब उसे अजीब निगाहों से देखते हैं। यही निगाहें नायिका को सोचने के लिए मजबूर करती है और वह दलित समाज के लिए कुछ सार्थक करने के लिये फैसला लेती है जो प्रेरणादायी है–'मुझे कुछ करना है, पूरे दलित समाज के लिए, मानव समाज के लिये। साधारण जीवन से उठकर, जीवन का मूल्य समझना है।'[13] इस प्रकार 'मुझे जवाब देना है' कहानी के द्वारा सुशीलाजी हिन्दू धर्म की गुलामी में फंसी दलित स्त्रियों को जीवन की प्राथमिकता समझने की सीख देती है।

सुशीला टाकभौरे अम्बेडकरवादी है। इसलिए उनकी कहानियों में अम्बेडकरवादी विचार सर्वत्र दिखाई देते हैं। बाबासाहब ने दलितों–पिछड़ों के उद्धार हेतु अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया। उनका सूत्र– शिक्षित बनो, संगठित रहो और संघर्ष करो ने दलितों में ऊर्जा भरने का कार्य किया है। आज खास आवश्यकता है दलितों के संगठन की। अगर दलित एकजुट हो जाये, मुकाबला करे तो उत्पीड़न से छुटकारा पाया जा सकता है। 'बदला' कहानी में इस बात की पुष्टि देखने को मिलती है। प्रस्तुत कहानी का नायक कल्लू दलित है। स्कूल में सवर्ण सहपाठी जाति के नाम पर उसे बार–बार चिढ़ाते हैं, पिटते हैं। एक दिन जूठन खानेवाली बात को लेकर कल्लू गुस्सा करता है और सवर्ण लड़कों की पिटाई करता है। कुछ समय बाद राजन, सुनील, गुड्डू के परिवार वाले डण्डे लेकर कल्लू की शिकायत करने एवं झगड़ा करने आते है। वे कहते है दलित होकर हमारे बच्चों पर हाथ उठाया। वे लोग भंगी की औलाद, भीखमंगे, भिखारी, अछूत, शूद्र जैसे शब्दों के द्वारा अपमानित करते है। छौआ माँ को ये सब सुन के बहुत दुःख होता है। कल्लू ने माँ एवं नानी को बताया कि वे बार–बार जाति के नाम चिढ़ाते थे इसलिए मैंने बदला लेना तय किया। महीने के बाद चार लोग कल्लू को लाठी से पिटते है। नर्मदा काटेवार देख लेता है वह कल्लू के घर जाकर खबर देता है। सभी दौड़ते हुए पहुँचते है। कल्लू के पिता हाथ में लाठी लेकर घुमाने लगते है। राधे काटेवार, कल्लू के दोस्त के पिता लाठियाँ लेकर आते हैं। छौआ माँ रूद्र रूप धारण कर गालियाँ देकर बदला ले रही है। कल्लू को मारनेवाले भाग डरकर भाग जाते है। इस प्रकार निम्न–गरीब एक होकर सामना करेंगे तो सवर्ण को भागना ही पड़ेगा। एकता में बल होता है। राधे काटेवार सभी से कहता है–'छौआ माँ हमारी माँ है। छौआ माँ की बेटी हमारी बहन है। हमारे रहते इनको कोई हाथ भी नहीं लगा सकता। हम सब मिलकर रहेंगे तो हमारी ताकत बहुत बड़ी ताकत बनेगी। एकता की ताकत से ही हम दुश्मनों से बदला ले सकते हैं।'14 यहाँ दलितों में जागृति आई है यह दिखाया गया है और वर्चस्ववादियों न समझे कि पिछड़े दबकर रहे, कतई आवाज न उठाये। यह कहानी अपने आप में महत्वपूर्ण है तथा शीर्षक की सार्थकता भी सिद्ध करती है।

समग्रतः कहा जा सकता है कि सुशीला टाकभौरे की कहानियों में छुआछूत की समस्या, गरीबी, शिक्षा का अभाव, दहेज, लड़का–लड़की में भेदभाव, शोषण और दलित नारी की समस्या, संघर्ष, उत्पीड़न दलित जीवन का यथार्थ उकेरा गया हैं। साथ ही ये तमाम कहानियाँ शिक्षा, संघर्ष एवं संगठन की त्रिसूत्री का अनुसरण करती हुई, अनुभूति की अभिव्यक्ति का सशक्त मार्ग प्रदर्शित करती हैं। ये कहानियाँ सीधी, सरल व स्वाभाविक भाषा में लिखी गई हैं।

अध्यक्ष–हिंदी विभाग
जी.एल.एस. फॉर गर्ल्स कॉलेज, लाल दरवाजा,
अहमदाबाद–380001 (गुजरात)
चलभाष – 9638437011

संदर्भः–

1 m.hindi.webdunia.com
2 संघर्ष – डॉ. सुशीला टाकभौरे
3 वही – पृ. 16
4 मंतव्य (पत्रिका) संपा. अतिथि–सूरज बड़त्या–वर्ष–2017, पृ. 283
5 वही–मंतव्य–संपा. अतिथि–डॉ. सूरज बड़त्या अक्टूबर–नवम्बर 2017, पृ. 283
6 संघर्ष–वही पृ. 82,
7. वही पृ. 89
8. अनुभूति के घेरे–सुशीला टाकभौर–शब्द सृष्टि प्रकाशन, दिल्ली–2011, पृ. 69
9. वही पृ. 17,
10. वही पृ. 20
11. टूटता वहम–सुशीला टाकभौरे पृ. 41
12. वही पृ. 45,
13. दलित लेखन में स्त्री चेतना की दस्तक–संपा. शिवरानी प्रभात पुराल पृ. 56 अक्षरशिल्पी प्रकाशन, दिल्ली–2017
14. जरा समझो (कहानी संग्रह) सुशीला टाकभौरे वाणी प्रकाशन, दिल्ली–2015, पृ. 43

गीत–ग़ज़ल : 'कोई भी एक दूसरे को अब समझ पाता नहीं'

– डॉ. मधुर नजमी

हिन्दी–नवगीत के प्रमुख कवि, असरदार समीक्षक डॉ. महेश्वर तिवारी समूची हिन्दी–कविता और साहित्य के परिदृश्य पर अपनी दृष्टि डालते हुए कहते हैं, ''आज कविता ही नहीं, समूचे कला माध्यमों पर गहरा संकट घिरने लगा हैं। बाजारवाद सब कुछ दुकान की शक्ल में बदलने पर आमादा है। ऐसे हालात में गीत कैसे बच सकता है? वह तो अत्यन्त सूक्ष्म कलां माध्यम है, फिर भी गीत लिखने वाले गीत लिख रहे हैं। समय के दबाव को एक चुनौती मानकर....''

आज हर कला माध्यम बाजार का हिस्सा हो गया है। सघन संवेदना के अकाल का असर है जैविक चीज़ में देखा–महसूस किया जा सकता है। हिन्दी–कविता के सम्प्रेषण का सर्वाधिक सशक्त माध्यम 'काव्य–मंच' रहा है, किन्तु आज वह माध्यम अवसानोमुख है। पहले विद्यालयों, स्वैक्षिक संस्थाओं, सरकार माध्यमों से आयोजन हुआ करते थे। कमोबेश होते आज भी है किन्तु व्यवस्था संयोजकीय होती है। संयोजक अपने परिचय के कवियों, शाइरों, कवयित्रियों, शाइरात को आमंत्रित करता है। इन चुनाव में उसका कई–कई नज़रिया होता है। इस नज़रिया में 'दृष्टि' कम और कोण अधिक होते हैं। अधिकतर आयोजनों में सरस्वती विहीन कवयित्रियों और साइरात होती हैं या हसोड़ कवि जो अपनी विशिष्ट भाव–मुद्रा परिधान से हास्यास्पद होते हैं वे शब्दों से नहीं अपनी फूहड़ अदाकारी से सामयिक (श्रोताओं) में पहचाने जाते हैं। अधिसंख्य कवयित्रियां, शाइरात साहित्य से इतर कारणों से पहचानी जाने लगी है। ऐसा नहीं कि प्रतिभा–सम्पन्न कवयित्रियों–शायरात का अकाल है किन्तु शालीन और प्रतिभा रचना कवियों को पूछने वाले कम संयोजक रह गये हैं आयोजन अगर सरकारी हुआ तो साहित्य का कोई अर्थ नहीं। सिर्फ संचालक के शिगूफों में रात गुज़र

जाती है। हिन्दी–उर्दू दोनों ही काव्य मंच पर गलाबाजी और अदबी नटों का बोल बाला है। किसी उस्ताद शाइर से ग़ज़लें लिखवा कर मंचों से तालियां बटोर रहे हैं। आज भी अच्छे गीतकार जिसकी तादाद बहुत कम रह गयी है। वे अपनी अच्छी रचनाएँ प्रस्तुत कर पाने का, काव्य–मंच से साहस ही नहीं कर पाते हैं। मंचीय स्थिति का उदाहरण इस पंक्तिकार के शे'र से भी होता है –

'बे–अदब अदीबों की साज़िशों के कारण ही
काव्य–मंच की कविता घिर गयी मुसीबत में''

साहित्य की हर विधा के बरक्स गीत लेखन सर्वाधिक असमावित काव्य–विधा है। आज के अधिसंख्य गीतों को पढ़कर यह धारणा बनती है कि इसमें भी अछान्दसिकता की बे–असर पैठ हो रही हे। गीत–ग़ज़ल को साधने के लिए सघन शिल्प की दरकार है। गीत के स्थान में गीतकारों के संकल्पित– समर्पित मन की मलीनता उजागर हो रही है। आज के गीत अपनी अनुगूँज छोड़ चुके हैं। यही वजह है कि अधिसंख्य गीतकार ग़ज़ल की ओर उन्मुख हो गये हैं। ग़ज़ल लेखन में आकर कुछ गीतकार, ग़ज़ल की अस्मिता को गुणात्मक कर हे हैं और कुछ है कि ग़ज़ल–विधा और छान्दसिकता कविता की ऐसी वैसी कर रहे हैं। फ़ेसबुक ने तो ऐरे–गैरों को ग़ज़लकार, गीतकार बना दिया है, नई चेतना का उत्साह गीत–ग़ज़ल की रचनाधर्मिता को लेकर स्वागतेय है, किन्तु खतरा इस बात का है कि अनुशासन खत्म हो रहा है। सतर्क दृष्टियाँ महसूस तो कर रही हैं किन्तु सही बात करने का साहस नहीं कर रही है। इस पंक्तिकार ने ग़ज़ल के बसते। संबर पत्रिका में प्रकाशित अपने सु–परिचित ग़ज़लकार के दोषयुक्त मतला पर सुझाव दिया उन्होंने बस यह प्रगतिशील ग़ज़ल है। मैंने बस प्रगतिशील ग़ज़ल का मतलब क्या अनुशासन मुक्तता है? फिर तो उनसे संवाद की स्थिति ही नहीं रहीं। कई–कई बार के फोन–सम्पर्क 'अकारथ' साबित हुए। 'व्याकरण ग़ज़ल का 'लेखक डॉ. कृष्णकार नाज़ पर अपनी टिप्पणी देते हुए, नवगीतकार योगेन्द्र वर्मा 'व्योम' कहते हैं। ग़ज़ल में बात करना और ग़ज़ल पर बात करना, दो अलग–अलग बातें हैं। ग़ज़ल के अनेक रचनाकार है जो अपनी शानदार ग़ज़लों के कारण देश ही नहीं देश की सीमा से बाहर भी लोकप्रिय हैं लेकिन ग़ज़ल पर बात करने से बचते हैं और ग़ज़ल के छन्द–विधान पर बात करना तो मुश्किल भरा काम है। ग़ज़ल–लेखन के क्षेत्र में नयी पीढ़ी के सामने तो दोहरा संकट उत्पन्न हो गया है, क्योंकि जहाँ एक ओर अधिकतर ग़ज़लकारों के पास ग़ज़ल के छन्द–विधान का सम्यक् ज्ञान नहीं है। वहीं दूसरी ओर ग़ज़ल के व्याकरण पर प्रमाणित पुस्तकों का अभाव भी खलता है।

भीमशंकर 'असर' साहित्य के गहन अध्येता और मर्मी समीक्षक और रचनाकार हैं। उनका नज़रिया रचनाकार और समीक्षक के प्रति गौरतलब है, सृजनकर्ता जिस आयाम पर पहुँचकर तकलीफ (रचना) करता है। वहाँ तक समीक्षक कभी नहीं पहुंच सकता है। यदि ऐसा होता तो समीक्षक स्वयं तकलीफ (रचना) करने लगता।' समीक्षक और सृजनकर्ता की स्थिति पर डॉ. कृष्णकुमार जासु का का यह शे'र ग़ौरतलब है, ज़ेहन और दिल में ठनी है इन दिनों कुछ इस तरह–

कोई भी एक दूसरे को अब समझ पाता नहीं

गीत की सूत्र–सत्ता को रूपांकित करती हुई सागर की डॉ. लक्ष्मी पाण्डेय ने अपी नैवन्धिक कृति अर्थात में लिखती हैं–'यह सृष्टि ब्रह्मा द्वारा गाया गया गीत है। सम्पूर्ण सृष्टि, इसकी हर उदादत गीतमय संगीतमय है। ब्रह्मा के चारों मुख से प्रकट हुए चारों वेद गेय हैं। इनमें पंच तत्वों – क्षिति, जल, पावक, गगन समीर का तथा अन्य दैवी उपादानों का महत्व आवाहन पूजन गीतात्मक पद्धति में ऋचाओं के रूप में वर्णित है। अतः इसे प्रमाण मानकर गीत–विधा सर्वाधिक प्राचीन विधा मानी जानी चाहिए तथा गीतकार ब्रह्मा का सच्चा उत्तराधिकारी....'

गीत की अन्तर्लीन समाहित प्रकृति द्वारा हर निमिति में है। गीत मांगलिकता का लोक–संतु है।

महानिदेशक–'काव्यमुखी साहित्य अकादमी'
गोहाना मुहम्मदाबाद–276403, जिला–मऊ (म.प्र.)
मोबा. 9369973494

कविताएँ :–

मतकरो कैक्टस की प्रकृति का आलिंगन ''''

– जयप्रकाश वाल्मीकि

परतंत्रता से होकर वशीभूत ।
तुम यह भी भुलते जा रहे हो
तुम भी मानव हो ।
शास्त्रीय हाथों मे थी शासन की नकेल
उन्होंने
तुम्हारे चारों ओर उगा दिया है
कुकुरमुत्ताओं का जंगल
तुम घुम फिर कर
इसी अरण्य में लौट आते हो।
चिन्तन करने अपनी एतिहासिकता का
तुम्हीं हो कालू के वंशज
जिसने खरीद लिया था राजा हरिश्चन्द्र को ।
लेकिन आज तुम निर्धनता में हो
जूठन पर आसरित हो
ऐसा क्या?
तुलना करो, तब और अब में
मनुज
यह प्रश्न तुम्हें झकझोर रहा है ।
इस आशा में कि
तुम्हें अपने अस्तित्व
अस्मिता और सम्मान का बोध हो जावे
पर तुम हो कि,
बुध्द को, कबीर को, ज्योतिबा को और अब
अम्बेडकर को भी
तुमने नैराश्य की सौगात दे डाली ।
पर अभी भी
बुध्द का धर्म,
कबीर की फटकार,
ज्योतिबा की सेवा
अम्बेडकर का जागरण इस आशा से तुम्हारा
पीछा कर रहा है कि
तुम
एक न एक दिन
उनका महत्व समझोगे
और करोगे अनुभव कि
शोषित–दलित तुम्हीं हो।
और हो
देश की समस्त संपदा के उत्पादन भी
लेकिन फिर भी
तुम्हारे सिर पर छत नहीं,
छत का ख्याल
तुम्हारे मन को छूने न पाये
इसलिए
शिक्षा का निषेध
शास्त्रकारों ने किया था ।
मनुज
अभी भी वक्त है, लौट आओ
कुकुरमुत्ताओं के जंगल से।
मत करो आलिंगन
कैक्टस की प्रकृति का।
तुम्हारी अस्मिता उसमें उलझ कर
दम ताड देगा इस बार
फिर तुम दलित हो
स्वतंत्र भारत में
केवल दलन के लिये ।

**14, वाल्मीकि कॉलोनी,
द्वारिकापुरी के पास
शास्त्री नगर,
जयपुर–302016 (राज.)
मोबा. 8559841747**

ऐ मन

– सरदार पंछी

ऐ मन हिम्मत छोड़ न देना।
शौक़–ए–मुहब्बत छोड़ न देना।

हार भी हो तो हार न कहना ।
पत्थर को दीवार न कहना।
तन्हा क़िस्मत छोड़ न देना।
ऐ मन हिम्मत छोड़ न देना।

चाहे जैसी मुश्किल आये।
सामने कोई मन्ज़िल आये।
दलन–ए–चाहत छोड़ न देना।
ऐ मन हिम्मत छोड़ न देना।

सुख में खुशियाँ देते रहना।
दुःख से ताक़त लेते रहना।
दर्द की संगत छोड़ न देना।
ऐ मन हिम्मत छोड़ न देना।

जागे नयन अधूरे सपने।
हो जाएं गे पूरे अपने।
उसकी रहमत छोड़ न देना।
ऐ मन हिम्मत छोड़ न देना।

जेठी नगर–मालेर, कोटला रोड
खन्ना–141401 (पंजाब)
मोबा. 94170 91668

करिश्मा कर दिया

– बी.एल. परमार

हमारे पैरों में पड़ी थी, गुलामी की बेड़ियाँ,
भीम तेरे विद्रोह से, टूट गई वो बेड़ियाँ

हमारी क्या बिसात, हम चढ़े ये सीढ़ियाँ
भीम तेरी प्रेरणा से, हम चढ़े ये सीढ़ियाँ।

हमने तो देखी थी, ऊँच–नीच की पेड़ियाँ,
भीम तेरे शौर्य से, समतल हो गई वो पेड़ियाँ।

यहाँ सदियों से, राज कर रही थी हवेलियाँ,
भीम तेरे संविधान ने, खामोश करदी हवेलियाँ।

हमें तो जाल में फांस कर, बैठा था बहेलिया,
भीम तेरे कानून से, अब भयभीत है बहेलिया।

सदियों से राजा को, जन्म देती थी रानियाँ,
भीम अब राजा को जन्म देती, तेरी मत पेटियाँ।

खूब सहे अत्याचार, दिल में दफन है वो कहानियाँ
भीम तेरी कलम से हम, लिख रहें नई कहानियाँ।

अब भी कुछ अहंकारी, कर रहे शैतनियाँ,
भीम हम संगठित नहीं हैं, उठा रहे हानियाँ।

भीम तेरे हौंसले को, हम देते हैं सलामियाँ,
शेर, बकरी को एक घाट, पानी पिला दिया।

कोई कर न सका करिश्मा, वो कर के दिखा दिया,
'बापू' तेने झाड़ू वाले हाथों में, कलम को थमा दिया।

13, भार्गव कॉलोनी, नागदा जं.
जिला–उज्जैन–456335 (म.प्र.)
चलभाष – 8770607747

साहिल

– धर्मेन्द्र गुप्त

ज़िन्दगी का सफ़र
तय करते–करते
कितनी दूर तक
चला आया
कितने पराये
अपने बन गये
कितने अपने
पराये
कितने मिले
कितने बिछड़ गये
कितने रास्ते टेढ़े–मेढ़े मिले
कितनी सुन्दर पगडंडियाँ भी
कई मोड़ आये
कभी सुन्दर
तो कभी दिल दहलाने वाले
फिर भी मैं
चलता रहा
कभी हमसफर के साथ
कभी बिलकुल तनहा
थका भी हारा भी
फिर साहस जुटाया
और चल पड़ा
ज़िन्दगी के साथ
ज़िन्दगी की तलाश में....

के–3/10ए
माँ शीतला भवन
गाय घाट,
वाराणसी–221001 (उ.प्र.)
मो. 089350 65229

सेकण्ड डिजिटल गुलामी

– सुदेश तनवर

जमीनों पर
क्या उगेगा
क्या कटेगा
ये वही बताएंगे
गाय–भैसों को क्या खिलाना है
क्या पिलाना है, ये भी
वही तय करेंगे.

न तुम्हारा
घर–बार होगा
न खेत–खलिहान
न तुम्हारे जंगल होंगे
न ही कोई जोहड़ तालाब
फिर तुम गर्व से
कभी नहीं कह सकोगे
हम ही इस देश के जल
जंगल जमीन के वासी हैं
हम ही दलित आदिवासी
हडप्पा के वंशज बहुजन
मूलनिवासी हैं–

बी–51,
पण्डारा रोड,
नई दिल्ली–110003

वे
तुम्हें मिटाकर अपना ही पौराणिक इतिहास
तैयार करेंगे ।

ग़ज़ल

– प्रवीण राही

रिवाजों के सांचे में ढलना पड़ेगा
तुझे वक्त के साथ चलना पड़ेगा

करेगा तरक्की की जो फास्ट बॉलिंग
उसे पिच पे आकर उछलना पड़ेगा

भले ही तू रन चाहे कितने बना ले
विकेट तो तुझे भी बदलना पड़ेगा

यूं कोई सूरज नहीं बन सका है
तुझे धूप में भी तो जलना पड़ेगा

सफलता का रास्ता भी आसान कब है
जो गिर जाए उसको संभालना पड़ेगा

अगर दूध पीना है बच्चे को मां का
तो कुछ देर उसको मचलना पड़ेगा

अगर तुमको राही है शोहरत की ख्वाहिश
तुझे घर से बाहर निकलना पड़ेगा

NC-102, Anju Singh, IRTS, infront
Manokamna temple, Near Rail chock,
(little ahead of DRM office) Moradabad- 244001
Mobile number 8860213526

लघुकथाएँ :–

मिल–बांटकर

– सोहनलाल सुबुद्ध

सुबह लगभग नौ बजे का समय है। वन्दना ने नाश्ता बनाया। नाश्ता दो लोगों के लिए ही बनाया। उसके बाद अपने लड़के को लेकर प्री–नर्सरी की ऑनलाइन पढ़ाई करवाने लगी। एक थाली में नाश्ता निकालकर अपने ससुर मोहन को दे दिया और एक प्लेट में पराठे बनाकर बड़े देवर प्रभाकर को दे दिया। छोटे देवर वीरेश के लिए नाश्ता नहीं बनाया। वीरेश के यह कहने पर कि मेरे लिए भी दो परांठे बना दिये होते,तो वन्दना ने चिल्लाकर कहा, 'मैंने तुम्हारी जिम्मेदारी नहीं ली। जाओ! बना लो! खा लो! जिसने जिम्मेदारी ली हो वो जाने।'

वन्दना के ससुर मोहन ने लड़के को बुलाया और कहा, 'आधा–आधा नाश्ता कर लेते हैं।' फिर दोनों ने आधा–आधा नाश्ता कर लिया।

दोपहर का खाना बनता है, तो वन्दना दोपहर को भी छोटे देवर वीरेश के लिए खाना नहीं बनाती है। ससुर मोहन को जो खाना मिलता है, उसमें फिर आधा–आधा करके मिल–बांटकर खा लेते हैं।

ससुर मोहन ने अपने मन की व्यथा किसी से भी नहीं कही। अपने मन में छिपा ली।

शाम को वन्दना का पति सुरेश जो डाक्टर है और रामपुर में नियुक्त हैं। अपने घर मुरादाबाद आता है।

मिल–बांटकर खाने और चुप रहने का असर यह होता है कि शाम का खाना बनता है, तो वन्दना सभी के लिए खाना बनाती है। खाना बन जाने पर वह ससुर मोहन, बड़े देवर प्रभाकर, छोटे देवर वीरेश और अपने पति सुरेश सभी को खाना परोस कर देती है।

एस–33, एल.डी.ए.कालोनी, ऐशबाग,
लखनऊ––226004 (उ.प्र.)
मोबाइल–9453283618 / 7510087621

अगर तुम न होते

– किशनलाल शर्मा

गले में कुछ अटक सा रहा है। दम सा घुट रहा है।

ऐसा क्या खा लिया, जो दम सा घुट रहा है? पहले चूहे की बात सुनकर दूसरा चूहा बोला–

बक्से के पीछे बर्फी का टुकड़ा पड़ा था। बस वो ही खाया है।

क्या? पहले चूहे की बात सुनकर दूसरा चूहा आश्चर्य से बोला, 'अरे, उस में जहर मिला होगा।'

बर्फी में जहर। क्यों? किसने मिलाया होगा? दूसरे चूहे की बात सुनकर पहला चूहा बोला।

कौन मिलायेगा? मकान मालिक ने मिलाया होगा?

लेकिन क्यों? दूसरे चूहे की बात सुनकर पहला चूहा बोला।

हम रात दिन खटपट करते रहते हैं। हमारी खटपट से परेशान होकर मकान मालिक ने बर्फी में जहर मिलाकर रख दिया होगा। दूसरा चूहा, पहले चूहे से बोला था।

मतलब अब मेरा अंतिम समय आ गया है। दूसरे चूहे की बात सुनकर पहला चूहा बोला।

सिर्फ एक ही सूरत में तुम्हारी जान बच सकती है। दूसरा चूहा बोला, 'अगर तुम्हें पीने को पानी मिल जाये तो।

तुम्हें कैसे मालूम पानी पीने से मेरी जान बच सकती है? दूसरे चूहे की बात सुनकर पहले चूहे ने पूछा था।

मेरे साथ ऐसा हो चुका है। मैंने भी बर्फी खा ली थी। मेरा दम घुटने लगा। मैं छटपटा कर इधर–उधर भागने लगा। मेरा गला सूखने लगा। और मैंने पानी पी लिया। पानी पीने से मेरी जान बच गई। दूसरे चूहे ने अपनी आपबीती सुनाई थी।

लेकिन यहां पानी कहां मिलेगा? दूसरे चूहे की आपबीती सुनकर पहला चूहा बोला।

यह पूजा का कमरा है। मंदिर में पानी जरूर होगा। और वे दोनों पानी ढूँढ़ने लगे। और उन्हें पानी मिल गया। पानी पीने के बाद पहला चूहा बोला, 'आज अगर तुम न होते तो? मैं मर ही जाता।

103, रामस्वरूप कॉलोनी, शाहगंज, आगरा–282010

कावेरी की कहानियाँ

पुस्तक समीक्षा **– जयप्रकाश कर्दम**

हिन्दी दलित साहित्य में गत चार–पाँच साल से तेज हुई सृजन की मुहिम अब काफी आगे बढ़ चुकी है। कविता, कहानी और आलोचना से लेकर उपन्यास, नाटक और आत्मकथा तक हर विधा में अब दलित साहित्य उपलब्ध है। सुखद बात है कि विश्वविद्यालयों में दलित साहित्य पर शोध कार्य भी अब शुरू हो गया है। दलित साहित्य के भविष्य के लिए शुभ संकेत है और आश्वस्त करती है कि वह दिन दूर नहीं जब सर्वत्र दलित साहित्य का वर्चस्व होगा। उल्लेखनीय है कि दलित साहित्य सृजन का यह कार्य मुख्यतः पुरुष लेखकों द्वारा ही सम्पन्न हो रहा है। लेखिकाओं की संख्या अपेक्षाकृत बहुत कम है। ऐसे में किसी दलित लेखिका की पुस्तक का प्रकाशित होना निःसंदेह एक महत्वपूर्ण घटना है।

कावेरी के कथा संग्रह द्रोणाचार्य एक नहीं में कुल पाँच कहानियाँ संग्रहित हैं। दददा से तीन कहानियाँ 'सुमंगली', 'दरियापुर वाली' और 'पलकी' में नारी के शोषण, संवेदना से उसकी अशिक्षा दो तथा अन्य दो

कहानियों 'द्रोणाचार्य' एक नहीं और 'प्रायश्चित' में दलित छात्रों व युवती के दर्द को कथ्य बनाया गया है।

'सुमंगली' की सुगिया आठ साल की उम्र से कामिल बन जाती है। बारह साल की होते–होते उसका योन शोषण शुरू हो जाता है और चौदह वर्ष की नादान उम्र में ही वह कुंवारी मां बन जाती है। बुधना से उसकी शादी तो हो जाती है किन्तु एक दुर्घटना में वह मर जाता है और इलाज के अभाव में उसका बच्चा भी चला जाता है। जिन्दगी भर ठेकेदारों की हवस की शिकार सुगिया असहाय बनी शोषण को सहती रहती है। यही उसकी नियति है।

'पलकी' अनमेल विवाह की परिणति की कहानी है। वृद्ध हारो खोयरी की जवान सुन्दर पत्नी 'पलकी' गंगू सिंह के प्रेम में फंस जाती है ओर एक दिन अपने पति और दो बेटियां को छोड़ उसके साथ भाग जाती है। गंगू सिंह का प्यार सच्चा नहीं होता। वह उसे अपनाता नहीं उससे धंधा करवाता है।

'दरियापुर वाली' में चाची हर साल बच्चा जनती है, लेकिन चार महीने से ज्यादा अपना दूध नहीं पिलाती और बच्चे कमजोर हो–होकर मर जाते है। ओझा इसे दरियापुर वाली की मृत बेटी का प्रेत बताता है जो उसके बच्चों को खा रही है। इसी कारण दरियापुर वाली के साथ गाली–गलौच और मारपीट की जाती है। पुलिस में उसकी रिपोर्ट नहीं लिखी जाती और सबसे बड़ी त्रासदी तो यह कि पीएचडी समाज सेविका भी भूत प्रेत का अस्तित्व स्वीकार करती है।

'द्रोणाचार्य एक नहीं' दलित छात्रों पर स्कूल–कॉलेजों में सवर्ण छात्र व अध्यापकों की जातीय घृणा, अपमान और ज्यादती की कहानी है। दलित छात्र का प्रथम श्रेणी से पास होना सवर्ण छात्रों व अध्यापकों की आँख की किरकिरी बनता है। प्रेक्टिकल में कम अंक देकर उसको फेल किया जाता है। सरकारी नौकरी में आ जाने पर भी सवर्ण अधिकारियों के जातीय अहं और भेदभाव का शिकार होता है। दलितों की यह भी एक विडम्बना है कि ऑफिस में सबसे अच्छा काम करने पर भी अधिकारियों से प्रशंसा और पुरस्कार मिलने की बजाय उन्हें अपमान, झिड़की और हतोत्साहन मिलता है। वार्षिक चरित्र पंजिका में उन्हें सबसे नीचा ग्रेड मिलता है। हर कदम पर द्रोणाचार्य एकलव्यों के अंगूठे काट रहे हैं।

'प्रायश्चित' एक दलित युवक द्वारा एक वैश्य लड़की के प्रति एकतरफा और सफल प्रेम की कहानी है। दीपू का पिता साहूकार के कर्ज में डूबा है। कर्म के सूद के बदले दीपू साहूकार की लड़की रूपाली को ट्यूशन पढ़ाता है। धीरे–धीरे उसकी और आकृष्ट हो उससे प्यार करने लगता है। रूपा से अपमानित होकर भी वह उसे दिल की गहराईयों से प्यार करता है। अपने स्वास्थ्य की परवाह न कर पूरे मनोयोग से रूपा को पढ़ाता है। यह अपना जीवन खो बैठता है लेकिन रूपा को डॉक्टर बनाने में कोई कसर बाकी नहीं छोड़ता। उसके मरने के बाद रूपा को इस बात का अहसास होता है।

लेखिका ने अच्छे कथानकों को अपनी कहानियों का प्रतिपाध बनाया है। दलित होने की पीड़ा और त्रासदी को तो लेखिका ने अनुभव किया ही है, दलित समाज की आंतरिक कमजोरियां और उसके कारणों से भी वह अच्छी तरह परिचित है। लेखिका के मन में एक कसमसाहट है और यह कसमसाहट इन कहानियों में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। वृतांत शैली में लिखी गई इन कहानियों में शिल्पगत सौन्दर्य ही नहीं इनकी संवेदनाएं मन को छूती है।

यूं महिलाओं का यह दावा है कि वे किसी भी मामले में पुरुषों से कम नहीं है। उनमें शिक्षा का विकास तथा प्रायः प्रत्येक क्षेत्र में उनकी भागीदारी इस बात के प्रति आश्वस्त भी करती है किन्तु उसके बावजूद एक बात निश्चित रूप से कहनी पड़ेगी कि उनकी सोच उतनी वैज्ञानिक और तथ्य परक बिलकुल नहीं हो पायी है। यही कारण है कि उच्च शिक्षित लेखिका जो एक

कनिज प्रवक्ता भी है। हर कदम पर ईश्वर, भाग्य और भगवान के प्रति अपनी आस्था व्यक्त करती है। बाबा साहब अम्बेडकर मानते थे कि दलित आंदोलन का बहुत कुछ दारोमदार स्त्रियों पर है। उनकी भूमिका बड़ी महत्वपूर्ण है। किन्तु यह भी मानना पड़ेगा कि जब तक दलित समाज की स्त्रियां भाग्य और भगवान के प्रभाव से मुक्त नहीं होगी तबतक बाबा साहब द्वारा दलित समाज के निर्माण में वे कोई सार्थक भूमिका निभा सकेगी, ऐसा नहीं लगता। यह बात इसलिए क्योंकि दलित साहित्य केवल आत्मसृष्टि या लोक रंजन की सिद्धि का साधन नहीं दलितों के सामाजिक आंदोलन का एक हिस्सा है। अपनी अस्मिता और अस्तित्व के संघर्ष में यह एक हथियार है। लेखिका इस बात पर गौर करेगी क्योंकि दलित साहित्य सृजन के लिए कई पुरस्कार/सम्मान उन्हें मिले है। भविष्य में बेहतर रचनाएं लेखिका अपने पाठकों को देकर अपनी भूमिका को और ज्यादा महत्वपूर्ण बनाएगी ।

डी.डी.ए. फ्लैट्स, लोनी रोड, दिल्ली

करनी कुछ और कथनी कुछ और

संस्मरण

– जयप्रकाश वाल्मीकि

बात 2018 मई माह की है। मैं अपनी पुत्री के विवाह से संबंधित बातचीत करने के कार्य से सवाई माधोपुर गया हुआ था। शाम को वहां से आ रही रेल गाड़ी से जयपुर लौट रहा था। रेल के सामान्य डिब्बे में इतनी भीड़ कि अंदर दाखिल होना ही मुश्किल हो गया। जैसे–तैसे अन्दर गया तो पांव भी ठीक से जमा कर खड़ा होना कठिन हो गया। गर्मी का मौसम । स्थिति ऐसी कि कमजोर, बीमार तथा वृद्ध लोगों का ऐसी भीड़ में दम घुटने से प्राण पखेरू उड़ जाय। सच पूछो तो रेल में बिना आरक्षण कराए सामान्य डिब्बे में यात्रा करना किसी सजा से कम नहीं है। बाद भी इसके रेल प्रशासन कभी इस ओर ध्यान नहीं देता।

एक वृद्धा कृषकाय उसी सामान्य कोच में यात्रा कर रही थी। अच्छे भलों का ही खड़ा होना दुष्कर हो रहा था। वह कैसे यात्रा कर रही होगी। उसका जी ही जानता होगा। पसीने से लथपथ। उसके श्वेत बाल बिखर गये थे। सिर से ओढ़नी हट गई थी। उसका यह हाल देखकर और स्वयं की पीड़ा महसूस करते हुए। सीटों पर कब्जा किए कई हट्टे–कट्टे लोगों से मैंने आग्रह किया कि आप लोग थोड़ा–थोड़ा खिसक कर माताजी को बिठा ले पर किसी के जूं न रेंगी। सब निर्दयी से बैठे रहे। उनकी ऐसी असंवेदनशीलता देखकर मैंने भीड़ में फसी उस वृद्धा को जैसे–तैसे आगे बढ़ाते हुए डिब्बे के दरवाजे तक पहुंचाया। मैं भी उसके साथ वहां तक पहुंच गया था। दरवाजे के सामने वाली गैलरी भी खचाखच भरी हुई थी। किसी को शौचालय तक जाना दुभर था। किन्तु दरवाजे से बाहर से हवा के जो जोखे आ रहे थे उसके कारण दम घोटू माहोल से यहां राहत थी। वह वृद्धा जैसे–तैसे वहां फर्श पर बैठ गई। रेल चलती रही और इस तरह चौथ का बरवाड़ा का स्टेशन आ गया। यहां चोथ माता का प्रसिद्ध मंदिर है। दूर–दूर से यात्री यहां चोथ माता के दर्शनों के लिए आते हैं। जैसे ही यह स्टेशन आया। पूरा डिब्बा जयकारों से गूंज उठा । लोगों ने श्रद्धा से हाथ जोड़े। हमारा समाज माताओं–देवियों पर अगाध आस्था रखता है, परन्तु उनकी प्रतिमूर्ति जीती–जागती वृद्ध माताओं, स्त्रियों के प्रति न सम्मान रखते हैं, न उनकी पीड़ाओं के प्रति संवेदना का भाव रखते हैं। व्यवहार में हमारी कथनी कुछ और होती है और करनी कुछ और होती है। व्यवहार में जब तक यह अन्तर रहेगा। माताओं, देवियों के प्रति हमारी आस्था, भक्ति सब कुछ निरर्थक है। दिखावे और आडम्बर के अतिरिक्त कुछ नहीं। संत कबीर ने ठीक ही कहा था–'आत्म मार पाषाण ही पूजे, उनको कुछ नहीं ज्ञाना।'

14, वाल्मीकि कॉलोनी, द्वारिकापुरी के पास
शास्त्री नगर, जयपुर–302016 (राज.)
मोबा. 8559841747

बाबा साहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर द्वारा उद्घोषित सामाजिक क्रांति जितनी भौतिक परिवर्तन एवं संघर्ष की थी उतनी ही विचारों की थी। स्वतंत्रता, समानता एवं भातृत्व, शिक्षा, संगठन एवं आन्दोलित होने की भावना, उन्हीं की सार्थक देन है और सच्चे अम्बेडकरवादी क्रांतिकारी इसकी उपज है। उन्होंने कहा था ''वह दर्शन जो समाज को टुकड़ों में बांटता है, कार्य को रुचि से अलग करता है, श्रम से बुद्धि को अलग करता है, आदमी के अधिकारों को उन हितों से बेदखल करता है, जो जीवन के लिए आवश्यक है और समाज को उन संसाधनों को गतिशील बनाने से रोकता है, जो संकट की घड़ी में सामान्य क्रिया के लिए अनिवार्य है, किस प्रकार सामाजिक उपयोगिता के मानदण्ड को संतुष्ट कर सकता है।''

डॉ. अम्बेडकर के अनुसार सही शिक्षा ही मानव प्रगति का सार है। उन्होंने सभी लोगों से आग्रह किया कि वे अच्छे आदर्शों को अपनाएं और सम्यक मार्ग पर चलें। किसी के आदर्श चाहे व्यक्तिगत हो, सामाजिक हों या राष्ट्रीय, उसे उन्हें निष्ठापूर्वक प्राप्त करने में संलग्न रहना चाहिए।

ऋषि–मुनि और पीर–पैगम्बर
सबसे निराली शान
बाबा !
तुमसा न कोई महान...

दलितता की खातिर जिसने
झेले थे अपमान रे...
अमर रहेगा–अमर हमारा
बाबा भीम महान रे...

पंजीयन संख्या
RNI No. MPHIN/2002/9510

डाक पंजीकृत क्रमांक मालवा डिविजन /204/2021–2023 उज्जैन (म.प्र.)

प्रतिष्ठा में ,

पत्र व्यवहार का पता :
20, बागपुरा, सांवेर रोड,
उज्जैन 456 010 (म.प्र.)

प्रकाशक, मुद्रक पिंकी सत्यप्रेमी ने भारती दलित साहित्य अकादमी की ओर से
मालवा ग्राफिक्स , 29, वररुचि मार्ग, गुरुद्वारे के सामने, फ्रीगंज, उज्जैन फोन : 0734–4000030 से मुदित एवं
20, बागपुरा, सांवेर रोड, उज्जैन 456 010 (म.प्र.) फोन : 0734–2518379 से प्रकाशित।

सम्पादक : डॉ. तारा परमार